नीरा

लेखक

श्री व्यथितहृदय

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४१९, अहियापुर इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] नवम्बर १९४३ [मूल्य १।।)

नोरा

[१]

जाड़े के दिन थे। सन्ध्या के चार बज रहे थ। ज्यों-ज्यों सन्ध्या अपने यौवन की ओर चरण बढ़ा रही थी, त्यों-त्यों दिल्ली के चाँदनी चौक में मनुष्यों की भीड़ भी बढ़ती जा रही थी। मनुष्यों की भीड़ के साथ ही साथ मोटरों, गाड़ियों, इक्कों-तांगों, और ट्राम गाड़ियों की चहल-पहल में भी अधिक उन्नति हो चली थी। ऐसा लगता था, मानों मनुष्य संध्या के यौवन के साथ अठखेलियां करने के लिये चाँदनी-चौक के आंगन में होड़ के साथ उतरा पड़ रहा हो!

पुलिन भी भीड़ में सड़क की एक पटरी पर धीरे-धीरे चल रहा था। भावों में डूबा-डूबा कुछ सोचता सा था। कभी-

कभी आंखें इधर-उधर बहक जातीं, और आने-जाने वालों में किसी के रूप-रङ्ग को चुपके से चुरा कर लौट आतीं। किसी पर हँसतीं, किसी पर दुख प्रगट करतीं, और किसी को अपने भीतर बसा लेने की भीतर ही भीतर कल्पना करतीं। पुलिन की आंखें उस समय तूलिका का काम कर रही थीं, और कहना न होगा, कि उसके मानस पटल पर बिना रङ्ग के ही अनेक चित्र बन रहे थे। पुलिन अपने अंतर के उन्हीं चित्रों को सतर्कता से देखने में तन्मय था।

सहसा पुलिन के पैर रुक गये। एक मधुर स्वर लहरी उसके कानों के मार्ग से उतर कर सारे शरीर में गूँज उठी। पुलिन सुनने लगा--

"मैं नाच गाऊँ रे अपने गिरिधर के सामने"।

स्वर में विचित्र आकर्षण था। संगीत की मधुरिमा के साथ डफली की धमक। पुलिन को ऐसा लगा, मानों संगीत के स्वर उसके प्राणों को बांध कर भागे जा रहे हों। पुलिन ने आंख उठा कर देखा—थोड़ी ही दूर पर एक भीड़ घेर कर खड़ी थी, और संगीत की मधुर धारा जन-जन के हृदय को डुबाती हुई चारों ओर आप्लावित हो रही थी।

मधुरिमा का एक ज्वार आया, और पुलिन को अपने पेट में खींच ले गया। पुलिन धीरे-धीरे चल पड़ा, और वहाँ पहुँच कर भीड़ में घुस सबसे आगे खड़ा हो गया। खड़ा होते ही पुलिन को

ऐसा लगा, मानों महीन बादलों के टुकड़े में लिपटा हुआ भूमि पर चाँद उतर आया हो, और लोग उसी को देख रहे हैं।

पुलिन की आँखें एक ही दौड़ में उलझ गईं। सङ्गीत की मधुरिमा के साथ ही साथ एक रूप भी पुलिन की आँख में उतर आया। पुलिन आखों को टिका कर देखने लगा—पंजाबी पायेंजामे और लम्बे कुर्ते के ऊपर वेणी लटक रही थी। किशोर वय, गौर वर्ण, भोली आकृति, और भोली आकृति में दो रसवती आँखें! संगीत का पद समाप्त करने के पश्चात् जब वह डफली बजा कर नाचने लगती, तब सचमुच रस की एक धारा सी बह उठती। उसी धारा में भीड़ का एक-एक व्यक्ति बहा जा रहा था!

भीड़ का एक-एक जन कदाचित् यही चाहता था, कि वह इसी प्रकार झूम-झूम कर नाचती रहे, और लोग उसे देर तक, बहुत देर तक देखते रहें। इसीलिए जब उसने संगीत बन्द कर पैसे के लिये डफली आगे बढ़ाई तब लोग जैसे नींद से चौंक पड़े, और बहुत से कह उठे, "और गावो, और गावो न!"

'अब नहीं बाबू, शाम हो गई है। अभी यहाँ से डेढ़-दो मील जाना है।'

पैसे गिरने लगे, पैसे, दो पैसे, और इकन्नी तक उसकी डफली में गिरी। कदाचित् ही ऐसा कोई रहा हो, जिसके सामने से उसकी डफली खाली लौटी हो। वह एक-एक के सामने डफली आगे बढ़ाकर पैसे मांग रही थी, और एक-एक उसकी डफली में पैसे डाल रहा था।

पुलिन उसके रूप और स्वर पर रीझा हुआ उसे देखने में तन्मय था। उसके एक-एक अंग की छवि उसकी आंखों में उतर आई थी। उसे इस बात का ध्यान ही नहीं रह गया था, कि उसकी भी बारी आने वाली है, और उसे भी पैसे देने हैं। वह तो उसकी एक-एक गति को देखने में तन्मय था। इसीलिये वह जैसे चौंक पड़ा, जब उसके कानों में ये शब्द पड़े, 'बाबू! आप भी पैसे दें!'

पुलिन जैसे सजग सा हो उठा। उसने देखा, डफली उसके सामने बढ़ी थी, और वह अपनी उन्हीं आंखों से उसकी ओर देख रही थी। पुलिन थोड़ी देर के लिये किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा हो गया। फिर अपने आप ही उसके हाथ जेब में चले गये। पुलिन का हाथ जब जेब से बाहर निकला, तब लोगों को यह देखकर अधिक आश्चर्य हुआ, कि उसके हाथ में पाँच रुपये का एक नोट था।

पुलिन के हाथ में पाँच रुपये का नोट देख कर उस शहरी भीड़ में तरह तरह की बातें होने लगीं! कुछ व्यंग्य स्वर भी पुलिन के कानों में पड़े किन्तु पुलिन ने किसी ओर ध्यान न देकर नोट उसकी डफली में डाल दिया।

गायिका अभी निश्चल रूप से खड़ी पुलिन के हाथ की ओर देख रही थी। पुलिन के हाथ में पांच रुपये का नोट देखकर उसकी भी आंखें चकित हो उठीं। उसे पहले यह विश्वास न

था, कि यह नोट उसी की डफली में गिरेगा। किन्तु जब पुलिन ने नोट डफली में डाल दिया, तब वह विचार-मग्न सी हो उठी। उसने एक बार पुलिन को नीचे से ऊपर तक देखा, और फिर उस नोट की ओर। वह इसी प्रकार कुछ देर तक कभी पुलिन को और कभी नोट की ओर देखती रही। फिर उसने दूसरे हाथ से नोट निकाल कर उसे पुलिन की ओर बढ़ाते हुये कहा, 'बाबू! आप इसे ले लें। मुझे तो पैसे-दो पैसे ही चाहिये!'

पुलिन अपने को खोकर उसकी ओर देख रहा था। उसकी इस बात ने उसे झकझोर दिया। वह ज्ञान रहित-सा होकर उसकी ओर देखने लगा। उसकी समझ में ही न आता था, कि वह क्या करे, और क्या उत्तर दे? भीड़ से फिर व्यंग्य स्वर निकले, और निकल कर पुलिन के कानों में गूँज गये। किन्तु पुलिन उनकी ओर ध्यान दिये बिना ही जल्दी में बोल उठा, 'पर यदि कोई तुम्हें पैसे दो पैसे की जगह पांच रुपये देता है, तो तुम्हें आपत्ति क्यों है?'

'हम गरीब हैं बाबू!—गायिका ने उत्तर दिया—अधिक पैसे लेकर क्या करेंगे? आप से ही कल फिर मांग लेंगे।'

पुलिन चमत्कृत हो उठा। उसने अभी तक उसमें रूप ही देखा था, किन्तु अब उसने उसमें और भी कुछ देखा और वह कुछ देखा, जो कदाचित् बहुत कम लोगों में दिखाई पड़ता है। पुलिन का अन्तर-अन्तर उस पर रीझ गया। किन्तु उसने अपने रीझे

हुए अन्तर को ऊपर न आने दिया, और कहा, मेरे पास पैसे नहीं!'

भीड़ में से फिर व्यंग्य-स्वर छिटके। किसी ने कहा, 'बड़ा अफसोस है!' किसी ने कहा, 'लीजिये मुझसे ले लीजिये!' एक-एक शब्द पुलिन के कानों में पड़े। गायिका ने भी उन्हें सुने। किन्तु दोनों में से किसी ने उस ओर ध्यान न दिया। दोनों दो भावनाओं के साथ एक दूसरे को देखने में संलग्न थे। दोनों को ऐसा लग रहा था, मानों दोनों ही किसी चीज़ में उलझते जा रहे हैं। गायिका ने झट अपने को उस परिस्थिति से अलग करते हुये कहा, 'आज पैसे नहीं हैं, तो दूसरे दिन कभी ले लूँगी बाबू' आप इसे रख लें!'

गायिका ने अपना हाथ और आगे बढ़ा दिया। अब उस भीड़ में पुलिन को ऐसा लग रहा था, मानों उसके पंख कट गये हों, और वह गिर रहा हो! पुलिन के भाल पर पसीने की बूँदें झलक आईं। वह अपने भीतर एक विचित्र परिस्थिति का अनुभव करने लगा। गायिका ने पुलिन की ओर देखा, और फिर उसने वह नोट पुलिन के हाथ पर डाल दिया। नोट भूमि पर गिर पड़ा।

गायिका फिर न रुकी। उसे अभी और भी कुछ लोगों से पैसे माँगने थे, किन्तु अब पैसे लेने के लिये किसी के सामने उसकी डफली आगे न बढ़ी। वह पुलिन के हाथ पर नोट डाल

कर एक ओर से एक ओर को चली गई। उसके जाते ही भीड़ भी तरह-तरह की बातें करती हुई छँटने लगीं किन्तु पुलिन अभी निश्चल ही खड़ा था।

कुछ देर के बाद वह भी नोट उठा कर अपने इष्ट स्थान की ओर चल पड़ा। चलते समय उसे ऐसा लग रहा था, मानों उसका मन कहीं खो गया है, और उसके भीतर अब कुछ भी नहीं है।

— :***: —

[२]

दिल्ली में बाबू प्रमोद राय का बड़ा नाम था। नगर में उनकी कई दुकानें, और मकान थे। पैतृक सम्पत्ति भी अच्छी थी। सम्पत्ति के साथ ही साथ सम्मान का तार भी परम्परा से अखण्ड रूप में चला आ रहा था। समाज और नगर में यदि कोई प्रमुख कार्य होता तो उनकी पूछ अवश्य होती। उत्सव, सभा-समितियाँ प्रमोद राय के बिना सूनी लगतीं। उनकी 'हाँ' में 'हाँ' और 'नहीं' में 'नहीं' मिलाने वाले उनके अनेक साथी थे। कुछ हृदय के उदार थे, किन्तु उदारता से अधिक पैसे का प्रभुत्त्व अधिक था। पैसे के प्रभुत्त्व ने मानवता को दबा दिया था, और प्रमोद राय चारों ओर प्रमोद राय हो रहे थे।

पाठक अभी पुलिन को न भूले होंगे। पुलिन इन्हीं प्रमोद-राय का पुत्र था। एक ही पुत्र था, इसलिये प्रमोद राय की

पुलिन पर बड़ी-बड़ी आशायें थीं। प्रमोद राय पुलिन को अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाना चाहते थे, वे उसे यूरोप और जर्मनी इत्यादि देशों में भेज कर उसे व्यापार जगत का बड़ा से बड़ा और अच्छा से अच्छा अनुभव प्राप्त कराना चाहते थे। किन्तु पुलिन की प्रारम्भ से ही संगीत, कला और चिकित्सा की ओर विशेष अभिरुचि थी। अतः जब वह युनिवर्सिटी से निकला, तब उसने मेडिकल कालेज में अपना नाम लिखा लिया, और डाक्टर बन गया।

पुलिन एक कुशल डाक्टर बनना चाहता था। एक डाक्टर को ख्याति प्राप्त करने के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है, वह सब पुलिन में विद्यमान थीं। इसके अतिरिक्त पुलिन भावुक और संगीत प्रेमी भी था। पुलिन की भावुकता कभी-कभी प्रमोद राय को खटक जाती थी। जब कभी पुलिन अपनी भावुकता और उदारता के कारण ग़रीबों और अछूतों के बच्चों को पकड़ लेता, उन्हें बिठाल कर उनसे गाना सुनता, उनके गालों पर मीठी चपतियाँ जमा कर उन्हें मिठाइयाँ खिलाता, तब प्रमोद राय को ऐसा लगता, मानों उनके शरीर में शत-शत बिच्छू दंश मार रहे हों। वे कभी कभी अपनी इस पीड़ा को पुलिन के सामने निकाल कर रख भी दिया करते थे। किन्तु पुलिन अपनी जन्म जांत प्रकृति से विवश था। वह प्रमोदराय के बारबार टोकने, और अधिक बुरा लगने पर भी ग़रीबों और अछूतों के बच्चों से

मिला करता, उन्हें बिठालकर उनके गाने सुना करता था।

प्रमोदराय के न चाहने पर भी पुलिन ने अपना एक अस्पताल खोल रक्खा था। जिसे कहीं स्थान न मिलता, पुलिन चिकित्सा के उद्देश्य से उसे स्थान देता और प्रेम से चिकित्सा करता। यद्यपि उसे अस्पताल खोले हुए अभी थोड़े ही दिन हुये थे, किन्तु ग़रीबों और अपाहिजों में वह गूँज चला था। उसके अस्पताल में अधिकतर ग़रीब और निराश्रित आते भी थे। जो दवा के पैसे देने योग्य होता, उससे पुलिन पैसे अवश्य लेता था, किन्तु जो न देने योग्य होता, उसे मुफ़्त में दवा भी दिया करता था।

पुलिन का अधिकांश समय उसके अस्पताल में ही बीतता था। कभी-कभी वह दोपहर का खाना भी अस्पताल में ही घर से मँगा लिया करता था। जो भी आता, उससे प्रेम से मिलता, और हँस कर बातें करता था। प्रेम और प्रसन्नता उसके अंग-अंग से छलकी पड़ती थी। रोतों हुओं को भी हँसा देता था, और मुर्दों को भी अपनी स्फूर्ति से उठाकर खड़ा कर देता था। विचित्र था वह युवक पुलिन! युवक मण्डली उसकी खोज में रहा करती थी। किन्तु वह बहुत कम लोगों के यहाँ व्यर्थ आता जाता था। जहाँ भी जाता, काम से ही जाता था और जो भी बात करता, काम की ही बात करता था।

पुलिन की आकृति पर कभी किसी ने उदासीनता और चिन्ता

के भाव न देखे। वह जब जहाँ रहता; स्फूर्ति और जीवन का सागर छलकाया करता था। किन्तु इधर अब वह कई दिनों से अधिक उदास रहने लगा था। उसकी वह हँसी, जो दूसरों को हँसाया करती थी, और उसकी वह स्फूर्ति, जो दूसरों की रगों में जीवन का संचार करती थी, अब जैसे किसी के नीचे दब गई थी। पुलिन अब प्रायः चिन्ता में मग्न रहता। वह अब प्रायः कुछ सोचा करता, और किसी में डूबा रहता था। चिकित्सा-कार्य में भी अब उसका मन बहुत कम लगता था। आने वाले रोगियों की वह अब भी चिकित्सा करता, किन्तु दबे और टूटे हुए मन से। हंसी ओंठों से निकल गई थी, सौहार्द कहीं दूर जा बसा था। अब मृदु मुसुकुराहट और सौहार्द के स्थान पर था, एक झंझावात, सूखा, और रूखापन! मित्र और परिचित पुलिन में इस आकस्मिक परिवर्तन को देख कर अधिक-अधिक आश्चर्य चकित हो रहे थे। किन्तु किसी को यह क्या ज्ञात था कि पुलिन चाँदनी चौक में लुट आया है, कोई उसके मन को बाँध कर अपने साथ ले गया है।

सचमुच पुलिन चाँदनी चौक में लुट गया था। सचमुच अब उसका मन उसके भीतर नहीं था। उस दिन चाँदनी चौक में उसके प्राण सचमुच उस गायिका की इस शब्दावली के पीछे-पीछे भाग रहे थे, 'बाबू हम ग़रीब हैं, अधिक पैसे ले कर क्या करेंगे?' गायिका के स्वर और उसके भोले रूप ने पहले पुलिन को आक-

र्षित अवश्य किया था, पर अब रूप का स्थान भावों की उच्चता ने ले ली थी। पुलिन जब उस गायिका के सम्बन्ध में सोचता, तब उसका रूप आँखों के सामने आने के बहुत पहिले ही उसकी शब्दावली कानों में गूँज जाती। पुलिन उसी पर तो रीझा हुआ था। उसने बहुत से ग़रीब देखे थे, बहुत से मुहताजों से उसका पाला पड़ा था, किन्तु उसने ऐसा एक भी ग़रीब न देखा था, जो अधिक पैसे को अपनी ग़रीबी के लिये भार समझता हो।

ग़रीब क्या, ग़रीब अमीर सभी इस संसार में पैसे को तो अपने दाँतों से पकड़ते हैं। पैसे के लिये लोग क्या नहीं करते? पैसे के लिये ही तो मानव-मानव से पशु बन जाता है। पैसे ही के लिये भाई-भाई का परित्याग कर देता है, पुत्र, पिता से विलग हो जाता है और पत्नी-पति का साथ छोड़ देती है। किन्तु उसी पैसे को उस ग़रीब भिखारिणी ने उपेक्षा की दृष्टि से देखा, यही पुलिन के लिये एक बहुत बड़ी उलझन की वस्तु थी। पुलिन को उसके फटे वेश में कोई उच्चता झलकती हुई दिखाई दे रही थी, और इसीलिये पुलिन उसके सम्बन्ध में बराबर सोच विचार किया करता था, 'वह कौन है? कहाँ रहती है? क्या किसी संभ्रान्त वंश की है, और दुर्दिन के आवर्त में फँस गई है?' पुलिन ज्यों-ज्यों उसके सम्बन्ध में सोचता, त्यों-त्यों उसका मन उसकी ओर और भी गति से भागने लगता था। पुलिन अपने मन से विवश हो कर प्रायः रोज़ ही चाँदनी चौक का चक्कर

लगाता था। उसे विश्वास था कि वह अवश्य चाँदनी चौक में आती होगी, और नाच-गाकर पैसे माँगती होगी, किन्तु पुलिन ने फिर उसे न देखा। अन्त में चिन्ता, और उदासीनता के स्थान को निराशा ने ले लिया, और पुलिन उसकी स्मृति अपने हृदय में छिपा कर टूटे हुये मन से फिर अपने काम में लग गया।

— ——

[३]

रात के आठ बज रहे थे। पुलिन अपने अस्पताल के कक्ष में बैठा हुआ खिड़की के मार्ग से बाहर की ओर देख रहा था। बाहर खिड़की के सामने एक विस्तृत मैदान था, और उसमें चाँदनी हँस रही थी। हँसती हुई चाँदनी की धूमिल किरणें पुलिन की खिड़की को भी स्पर्श कर रही थीं। आश्चर्य नहीं, कि कोई धूमिल रेखा कमरे के भीतर भी दौड़ जाती, किन्तु कमरे के भीतर जो बिजली की बत्ती जगमगा रही थी।

पुलिन ने अनेक चाँदनी रातें देखी थीं। उसने हँसती हुई चाँदनी में कई बार नौका विहार भी किया था। पर आज सामने के मैदान में हँसती हुई चाँदनी उसकी आँखों में एक विचित्र ही सुख घोल रही थी। पुलिन उसी सुख के उन्माद में सोचने लगा, कितना अच्छा होता, यदि यह चाँदनी वन, उपवनों, गिरि-गह्वरों,

और तरङ्गों पर हँसने के साथ ही साथ मानव हृदय में भी हँसती। मास में एक ही पक्ष सही, हृदय की कालिमा तो धुल जाती और मानव अपने को मानव के रूप में तो पाता......!

सहसा पुलिन की कल्पना के तार टूट गये। 'नमस्ते' के मृदुल शब्द से उसकी आँखें द्वार की ओर खिच गईं, और उसने देखा, 'नमस्ते', के साथ दोनों हाथो को जोड़े हुये माया खड़ी है।

पुलिन अपने को सावधान कर बोल उठा, आओ, बैठो माया!

माया पुलिन की मेज़ के पास पड़ी हुई एक कुर्सी पर बैठ गई। कुर्सी पर बैठते-बैठते उसने कहा, 'क्षमा कीजियेगा पुलिन बाबू, मुझे ज्ञात न था, कि आप किसी साधना में मग्न हैं!'

तुम भी क्या कहतीं हो माया!—पुलिन ने अपने को संभाल कर उत्तर दिया—मैं और साधना! दोनों में उतना ही अन्तर है, जितना भूमि और आकाश में। यही सामने मैदान में हँसती हुई चाँदनी को देख रहा था, और यह सोच रहा था, कि यदि यह चाँदनी मानव-हृदय में भी हँस सकती तो कितना अच्छा होता!

माया एक अकल्पित आनन्द से भीतर ही भीतर झूम उठी। उसे ऐसा लगा, मानों उसके अन्तर में सुख का स्रोत फूट पड़ा हो। किन्तु उसने बड़ी सतर्कता से अपने आन्तरिक भावों को

भीतर ही दबा रक्खा, और कहा, 'यह चाँदनी आपको अच्छी लग रही है पुलिन बाबू! सचमुच आज की चाँदनी कुछ और ही प्रकार की ज्ञात हो रही है।'

माया पुलिन की ओर देखने लगी। पुलिन किसी ओर ध्यान न दे कर वास्तविकता के साथ बोल उठा, चाँदनी कैसे न अच्छी लगेगी माया! देखो न, उसकी हँसी से सामने का सूना मैदान भी हँस रहा है!

पुलिन फिर खिड़की के मार्ग से मैदान की ओर देखने लगा। माया भी अपनी आँखों को खिड़की की ओर ले गई। कुछ देर तक देखती रही, कभी पुलिन की ओर, और कभी सामने हँसती हुई चाँदनी की ओर। फिर बोल उठी, सचमुच चाँदनी प्रकृति की अनुपम देन है पुलिन बाबू! फिर चलिये न, थोड़ी देर के लिये बाहर चाँदनी में घूम आये।

माया का हृदय धड़कने लगा। उसके भीतर एक द्वन्द उपस्थित हो गया। जाने पुलिन उसके प्रस्ताव को स्वीकार करे या न करे! पुलिन अभी खिड़की ही की ओर देख रहां था। माया की इस बात से वह माया की ओर आकर्षित हुआ और उसकी ओर देखता हुआ बोल उठा, किन्तु तुम जानती हो, कि मेरा अस्पताल में रहना अधिक आवश्यक है। जाने, कौन, कब दुर्भाग्य का मारा आ जाय!

माया को ऐसा लगा, मानों उसकी डोर सीधी जा रही

है, और वह पतङ्ग को फाँस लेगी ! वह आशा का अचल पकड़ कर और आगे बढ़ी, और कहने लगी, अब रात को कौन आता है पुलिन बाबू ! चलिये न, घूम आवें ! फिर कम्पाउंडर तो है ही !'

'आने की बात न कहो माया !–पुलिन ने उत्तर दिया-आने को तो लोग आधी रात गये आते हैं !'

पुलिन कुछ सोचने लगा। वास्तव में उसका भी मन चाँदनी में घूमने को कर रहा था। आज कई दिनों से वह बाहर न निकला था। किन्तु वास्तव में उसके सामने अपने कर्तव्य का प्रश्न था। वह अस्पताल को छोड़ना न चाहता था। उसके अस्पताल में अधिकतर ग़रीब और निराश्रित ही आते थे। पुलिन नहीं चाहता था, कि उसके अस्पताल से कोई ग़रीब और निराश्रित निराश हो कर लौट जाय। किन्तु आज हँसती हुई चाँदनी भी पुलिन के मन को खींच रही थी, और उधर माया का आग्रह ! पुलिन विचार मग्न हो उठा।

मांया की चपल आँखें भावुक पुलिन के अंतर-अंतर में जा घुसी थीं, और उसके भीतर बनते-बिगड़ते चित्रों को देख रही थीं। उन चित्रों के सृष्टि-प्रलय को देख करके ही माया की आशा छलक उठी, और वह अधिक आशावती हो कर बोली। 'चलिये पुलिन बाबू ! अभी थोड़ी देर में लौट आयेंगे !'

माया के स्वर में उसके हृदय की सारी आकांक्षा थी। उसने

अपनी यह बात इस ढङ्ग से कही, कि यदि पुलिन घूमने के लिये न चलेगा तो उसके हृदय को अपार कष्ट होगा। पुलिन ने एक बार माया की ओर देखा। माया सतृष्ण नेत्रों से पुलिन की ओर देख रही थी। पुलिन बोल उठा, अच्छा मैं कम्पाउण्डर को कुछ आदेश दे दूँ तो चलूँ।

पुलिन कुर्सी से उठकर एक दूसरे कमरे की ओर चला गया। माया आनन्द के झूले झूल रही थी। आज कई दिनों के पश्चात् उसे पुलिन के साथ घूमने का अवसर मिला था। इधर जब वह पुलिन के पास आती, पुलिन उसे चिन्ता और उदासीनता के समुद्र में गोते लगाता हुआ मिलता। वह पुलिन के हृदय में घुस कर उसकी उदासीनता और चिन्ता का कारण जानना चाहती थी, किन्तु पुलिन उसे अवसर ही न देता था। पुलिन की चिन्ता और उदासीनता से संसार में वह सबसे अधिक चिन्तित थी, उसे ऐसा लग रहा था, मानों कोई उसके मन को दबोच रहा हो, उसके प्राणों पर कर्कश प्रहार कर रहा हो।

पुलिन जब पुनः कमरे में लौट कर आया तो माया उसे कुर्सी से उठ कर खड़ी मिली। पुलिन ने एक बार कमरे में दृष्टि दौड़ाई, और फिर कहा. "चलो माया, शीघ्र लौट कर आना है।'

माया चुपचाप चल पड़ी। पुलिन भी उसके साथ-साथ चलने लगा। दोनों ने पहले सड़क पकड़ी। फिर सड़क से एक विस्तृत मैदान में जा पहुँचे। मैदान में चाँदनी खिल-खिल कर

हँस रही थी । चाँदनी की हँसी से पेड़, पौदे, अणु, परमाणु, सभी ज्योतित हो रहे थे । पुलिन का हृदय भी उस हँसती हुई चाँदनी से हँस पड़ा, और वह आँखों में तृप्ति भर कर उस वैभव को देखने लगा, जो उसके सामने चारों ओर छिटका हुआ था।

माया अभी तक चुप थी। उसने कितनी बार सोचा कि वह अपने मन को पुलिन के सामने रक्खे, पर उसे बातचीत आरंभ करने का कोई उपयुक्त ढंग ही न मिलता था। वह बड़ी देर से चुपचाप भीतर ही भीतर शब्दों का एक जाल तैयार कर रही थी। चाँदनी पर पुलिन को अधिक विमुग्ध देख कर उसने अपना जाल फेंका। वह एक बार पुलिन की ओर देख कर फिर बोल उठी, 'यह चाँदनी रात कितनी अच्छी लग रही है पुलिन बाबू!'

'हाँ माया !'–पुलिन ने उत्तर दिया-आज की चाँदनी को देख कर न जाने क्यों ।मेरे मन में एक कल्पना सी उभड़ आती है। मैंने अभी तुमसे अस्पताल में कहा था न, कि यदि यह चाँदनी मानव हृदय को भी हँसा सकती तो कितना अच्छा होता! देखो न, चाँदनी की हँसी से सभी जैसे धुल से गये हैं !'

माया को ऐसा लगा मानों अब उसे वह अवसर प्राप्त हो रहा है जिसका वह बड़ी देर से अनुसन्धान कर रही थी। उसकी चपल आँखों में एक उन्माद नाच गया। किन्तु उसने अपने को सावधान कर कहा, 'तो क्या आप यह समझते हैं पुलिन बाबू

कि चाँदनी मानव हृदय को नहीं हँसाती ! मेरा तो दृढ़ विश्वास है पुलिन बाबू, कि जिस प्रकार यह चाँदनी प्रकृति की रग-रग में उन्माद का रस घोल रही है, उसी प्रकार मानव हृदय को भी ज्योतित करने वाली एक चाँदनी है, और इस में संदेह नहीं, कि वह उसी से ज्योतित भी रहता है।'

पुलिन ने आश्चर्य-चकित होकर माया की ओर देखा। माया की आकृति पर उन्माद था, आँखों में रस था, और वह उसी में डूबी हुई कुछ सोच रही थी। पुलिन को अपनी ओर देखता हुआ देख कर वह सजग हो उठी, और आतुरता पूर्वक बोल उठी, 'आपको आश्चर्य हो रहा है पुलिन बाबू ! मैं सच कहती हूँ, मानव हृदय को भी हँसने वाली एक चाँदनी है !'

पुलिन अपने स्वाभाविक स्वर में बोल पड़ा, 'वह कौन सी चाँदनी है माया ! मैने तो आज तक उस चाँदनी को कहीं नहीं देखा !'

माया के भीतर नाचता हुआ उन्माद फूट पड़ा। उसकी रग रग में एक मूर्च्छित आनन्द का रस संचरित हो उठा। माया को ऐसा लगा, मानों अब वह अपने नाचते हुये मन को अपने बस में न रख सकेगी। फिर भी उसने अपने भीतर की सारी शक्ति लगा कर अपने मन को रोका, और कहने लगी, 'आश्चर्य है पुलिन बाबू, आपने उस चाँदनी को नहीं देखा। उस चाँदनी से जगत और मानव, दोनों ही का हृदय आलोकित हो रहा है।

और विशेषता तो यह है पुलिन बाबू, वह केवल मास में एक ही पक्ष नहीं हँसती, बल्कि प्रति दिन हँसती है, प्रति क्षण हँसती है और प्रति समय हँसती है। सच बात तो यह है, कि यदि वह न हँसे, तो मानव हृदय काली रात की तरह निरन्तर सायं सायं करता रहे!'

पुलिन और भी अधिक आश्चर्य-चकित हो कर माया की ओर देखने लगा। माया उड़ती चली जा रही थी। अब पुलिन को ऐसा लगा, मानों माया कुछ कहना चाहती है। पुलिन ने उसके अन्तर को खोलने की चेष्टा करते हुये कहा, 'अफसोस है माया, मैंने आज तक इस दूसरी चाँदनी को नहीं देखा! अच्छा होता, तुम मुझे दिखा देतीं!'

माया के मन के बाँध को पुनः एक कर्कश आघात लगा, और वह हिल पड़ा। तरंगें मन के बाँध को तोड़ कर बहने लगीं। माया के मन का कोना-कोना आप्लावित हो उठा। माया ने एक बार पुनः मन को बाँधने का प्रयत्न किया, किन्तु बाँध टूट जाने पर जल की प्रबल धारा को शीघ्र रोक सकना क्या संभव है? माया भी अब अपने मन के बाँध को न बाँध सकी, और आतुरता पूर्वक बोल उठी, 'आप उस चाँदनी को देखना चाहते हैं पुलिन बाबू! मेरी ओर देखें। मेरे कहने का तात्पर्य है पुलिन बाबू, कि नारी मानव-हृदय के लिये चाँदनी ही तो होतीं है। क्या यह सच नहीं है, कि प्रकृति की इस चाँदनी की तरह वह भी मानव-हृदय को आलोकित करती है, और उस हृदय

को आलोकित करती है, जहाँ यह बेचारी चाँदनी पहुँच भी नहीं पाती। कितना अच्छा होता पुलिन बाबू, यदि आप प्रकृति की इस चाँदनी की तरह मानव हृदय की भी चाँदनी को देखते!'

माया के मन का बाँध बिखर चुका था। उसका मन जल की अनियंत्रित धारा में बहा जा रहा था। माया ने पुलिन का हाथ पकड़ लिया। पुलिन के हृदय को एक आघात सा लगा। उसने एक बार सोचा, अपना हाथ छुड़ा ले, किन्तु संकोच ने उसके उभरे हुये मन को रोक लिया, और वह उसी रूप में दबे स्वर से बोल पड़ा, 'हो सकता है, तुम्हारी बात सच हो माया!'

'क्या आप इसे सच नहीं मानते पुलिन बाबू!–माया ने पुलिन का हाथ पकड़े हुये कहा—क्या नारी अपने हृदय के प्रेम से मानव-हृदय को चाँदनी ही तरह नहीं आलोकित कर रही है? क्या यह सच नहीं है, कि यदि मानव-हृदय से नारी का प्रेम निकाल लिया जाय, तो वह सूना हो जाय, गहरे गर्त की तरह अंधकार पूर्ण बन जाय!'

'नारी की श्रेष्ठता को मैं मानता हूँ माया!'—पुलिन ने उत्तर दिया,—यह तो ऐसी बात है, जिस पर विवाद चल ही नहीं सकता। किन्तु मुझे इसमें सन्देह है माया, कि नारी का प्रेम आज भी मानव-हृदय को चाँदनी ही की भाँति आलोकित किये हुये है। यदि ऐसा होता तो यह मानव आज कष्ट से इतना रोता क्यों, उसके वक्षस्थल पर कालिमा के ये दाग़ क्यों दिखाई देते?'

माया को ऐसा लगा, मानों पुलिन उसके अन्तर को भाँप गया हो, और उससे दूर खिसकने का प्रयत्न कर रहा हो। माया ने अब उसे चारों ओर घेरने का प्रयत्न किया और वह बोल उठी, 'तो क्या आप यह समझते हैं पुलिन बाबू, कि नारी का प्रेम, प्रवंचना, ठगौती, और वासना के अतिरिक्त कुछ और नहीं होता।'

'मेरे कथन का यह तात्पर्य नहीं है माया—पुलिन ने उत्तर दिया। और कहा, क्या बुरा मान गई माया !

माया चुप थी। पुलिन को ऐसा लगा, मानों उसने यह बात कहकर माया के नारी-हृदय को झकझोर दिया हो। पुलिन सदय हो उठा; और कह पड़ा; सचमुच माया, क्या बुरा मान गई। मेरा तात्पर्य यह कदापि न था कि नारी का प्रेम वासना—प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता !'

माया का ग्रन्थि-बन्धन खुल गया। वह बिखर पड़ी वास्तविक रूप में पुलिन के सामने। एक ही साँस में धड़कते हुये स्वर से कह उठी, 'तो फिर पुलिन बाबू ?'

पुलिन ने माया की ओर देखा। माया की साँस ज़ोर से चल रही थी। आँखों में एक उन्माद था। आकृति पर आतुरता के भाव थे। पुलिन अब सजग सा हो उठा। उसने माया की अन्तर-भावनाओं को पढ़ने के उद्देश्य से उस पर दृष्टि फेंकी, औरं उसने एक दृष्टि में माया के अन्तर-चित्र को पूर्ण रूप से समझ भी लिया। किन्तु फिर भी उसने माया के मन को अधिक

स्पष्ट करने के उद्देश्य से कहा,–'तो फिर क्या माया ? कहो न, कहो, क्या कहना चाहती हो ?'

कितनी बार कहूँ पुलिन बाबू !—माया ने अधीर होकर उत्तर दिया—अनेक बार तो आपके सामने हृदय खोल कर रख चुकी हूँ। आख़िर आप मेरे जीवन-समर्पण को....।'

पुलिन ने माया पर एक दृष्टि डाली। माया गिरने के लिये आतुर हो रही थी। पुलिन चाहता नहीं था, कि माया गिरे। क्योंकि उसके गिरने के साथ ही उसके भी गिरने का प्रश्न था, जो उसे स्वीकार न था। अतः वह रुक्षता के स्वर में बोल उठा, 'तुमने फ़िर वही बात छेड़ी माया ! मैं असमर्थ हूँ ?'

माया के हृदय को कर्कश आघात लगा। माया को ऐसा ज्ञात हुआ, मानों वह गिर जायगी। उस चाँदनी रात में भी उसके मस्तक पर पसीने की बूँदें चमक आईं। यदि चाँदनी न होती, तो निश्चय माया असहाय होकर पुलिन की गोद में गिर पड़ती। चाँदनी ने माया को सँभाला। माया सजग हुई। उसने धीरे से पुलिन का हाथ छोड़ दिया।

पुलिन ने चाँदनी में घड़ी पर दृष्टि डालते हुये कहा, 'चलो माया, अब लौट चलें। बड़ी देर हो गई।'

माया चुप थी। पुलिन लौट पड़ा। माया भी चलने लगी, और फिर उन दोनों ने उस रास्ते को इतनी शीघ्रता के साथ समाप्त कर डाला कि किसी को कुछ पता न लगा।

[४]

दिल्ली से कुछ दूर जमुना के समीप एक वाटिका में सिरकियों के कुछ छप्पर पड़े थे। दिन में जब दिल्ली चहल पहल से परिपूर्ण हो जाती, तो वे छप्पर मनुष्यों से खाली हो जाते, और रात में जब दिल्ली बिजली की बत्तियों के प्रकाश से चमक उठती, तो उन छप्परों के भीतर काली रात नृत्य करती। ऐसा ज्ञात होता, मानों सिरकियों के छप्परों की वह छोटी सी बस्ती वैभव शाली दिल्ली के विपरीत चलने के लिये ही बसी हो। दिल्ली में जो कुछ होता, उसका बिलकुल उल्टा सिरकियों की इस छोटा सी बस्ती में देखने को मिलता। वर्षा, तेज़ धूप, और अंधड़, भी दिल्ली की प्राचीरों और अट्टालिकाओं से उपेक्षित होकर उसी छोटी सी बस्ती में विलसते। कभी कभी अपनी उपेक्षा से अपमानित होकर जब क्रुद्ध होते, तब पाषाणों की

गोद में खेलती हुई दिल्ली का तो कुछ बिगाड़ न सकते, छप्परों की उसी छोटी सी बस्ती पर आकर बरस पड़ते। छप्परों के एक-एक सरकंडे को उधेड़ देते, अस्त व्यस्त कर देते। पता नहीं दिल्ली के हृदय में अपने पड़ोस में बसी हुई इस छोटी सी बस्ती के दुख दर्द पर कुछ रहम आता था या नहीं, किन्तु उनमें बसने वाले बड़े साहसी और दृढ़ आग्रही थे। वर्षा, धूप, और, अन्धड़ का जब नृत्य समाप्त हो जाता, तो वे फिर सिरकियों से अपना छप्पर बना लेते। न जाने वे कितनी बार अपना छप्पर बना चुके थे और बनाते ही जाते थे। कहना चाहिये, कि तीव्र वर्षा, अंधड़, और उनमें एक गहरी होड़ सी लग रही थी।

उन छप्परों में रहने वाले अधिकतर बेलदारी का काम करते थे। कुछ ऐसे भी थे, जो नाचते और गाते थे। बूढ़े, बच्चे, स्त्रियाँ, पुरुष, सभी के अपने अपने कुछ पेशे थे। सूर्य की किरणें जब पूर्व के झरोखे से हँस उठतीं, तब सब के सब रात का बासी खाना खाकर दिल्ली नगर की ओर चल देते। दिन भर परिश्रम करते, या अपने अपने पेशे से पैसे कमाते। संध्या होने पर थोड़ी देर के लिये वह बस्ती चहल-पहल से भर जाती। जब सब अपने-अपने काम से लौट कर आते तब जमुना का वह सुनसान किनारा भी एक रव से गूँज उठता। किन्तु ज्यों ज्यों अंधकार बढ़ता, वह शान्त होता जाता, और गहरे अंध कार में ऐसा विलीन होता, कि कहीं कुछ सुनाई ही न पड़ता।

सुरजन इसी बस्ती का एक बेलदार था। हट्टा, कट्टा, एक अधेड़ व्यक्ति था। उसका छप्पर सबके अंत में एक किनारे पर बना था। स्त्री बहुत पहले ही मर चुकी थी। कोई बच्चा भी नहीं था। स्त्री के मर जाने पर उसकी बिरादरी वालों ने उससे बहुत कुछ आग्रह किया, कि वह किसी दूसरी को बैठाल लें, किन्तु अब वह किसी दूसरे के साथ अपने जीवन को बाँधने के लिये तैयार न हुआ। दिन भर परिश्रम से कमाता, और सन्ध्या को अपने झोपड़े में आकर मोटी-मोटी रोटियाँ पका खा कर सो जाता था। खाने-कमाने से जो कुछ बचता वह अपनी बस्ती के बच्चों को बाँट देता था। बस्ती के सभी बच्चे उसे अधिक स्नेह करते थे।

दिन के दस बज रह थे। सुरजन अपनी झोंपड़ी में लेटा था। उस दिन उसका शरीर अस्वस्थ था। इस लिये वह काम पर न गया था। लेटे ही लेटे उसके मन में विचार उठा, कि वह जमुना के किनारे चल कर मछलियाँ फँसाये, और मछलियों का शोरवा बनाकर खाये। वह उठ बैठा और अपना मछलियों को फँसाने वाला काँटा लेकर जमुना के किनारे की ओर चल पड़ा।

जमुना का जन शून्य तट। चारों ओर एक सन्नाटा-सा खेल रहा था। दूर पर, उस पार, हरे हरे खेतों में घसियारिनें घास छील रही थीं। किन्तु इस पार कहीं कोई दृष्टि न आता था।

पास की झाड़ी के छोटे-छोटे पेड़ों पर कुछ पक्षी अवश्य फुदक रहे थे। सुरजन ने एक बार जमुना के उस जन शून्य तट की ओर देखा। न जाने क्यों, सुरजन का हृदय धड़क उठा। वह न जाने कितनी बार जमुना के उसी तट पर मछलियों का शिकार खेल चुका था। किन्तु कभी उसके हृदय में आज का सा भय-संचार न हुआ। सुरजन आश्चर्य-चकित हो कर इधर-उधर देखने लगा। हृदय की धड़कन से उसके मन में संदेह-सा जाग उठा, कि कहीं कोई भय-प्रद वस्तु है तो नहीं। किन्तु जब कहीं कुछ दिखाई न पड़ा, तो सुरजन अपने चित्त को दृढ़ कर काँटा जल में डाल कर मछलियों को फँसाने लगा।

अभी कठिनाई से दस-पन्द्रह मिनट बीत पाये थे, कि सुरजन की दृष्टि कुछ दूर पर तट से टक्कर खाती हुई जल की तरङ्गों पर पड़ी। सुरजन आश्चर्य-चकित हो उठा। उसकी रग-रग में एक भय-सा दौड़ गया। हाथ का काँटा छूटते छूटते बच गया। सुरजन ने अपने को सँभाला। उसने सोचा, कहीं उसकी आँखों को भ्रम तो नहीं हो गया है। वह अपनी आँखों को अधिक सतर्क करके दृढ़ता से उसी ओर देखने लगा। वस्तुतः वह एक शव था, जो जल की तरङ्गों से तट पर टक्कर खा रहा था, या कहना चाहिये, कि जिसे जल की तरङ्गें बल पूर्वक तट की ओर ढकेल रहीं थीं।

सुरजन शव की ओर कुछ देर तक देखता रहा। शव के

सम्बन्ध में उसके हृदय में तरह-तरह के संकल्प-विकल्प भी उठने लगे। उसके मन ने कहा, 'होगा किसी का शव! नदी तो है ही! उससे क्या तात्पर्य! किन्तु फिर वही मन बोल उठा, ज़रा समीप से उसे देखना चाहिये।' सुरजन जल से मछली का काँटा खींच कर शव के पास जा पहुँचा। उसे अधिक आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा शव का शरीर कहीं क्षत-विक्षत नहीं है। सुरजन को शव की आकृति पर एक जीवित आभा भी दिखाई पड़ी। सुरजन कुछ देर के लिये किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। फिर उसे ऐसा लगा, मानों उसकी आत्मा उस शव को जल से बाहर निकालने के लिये प्रेरणा दे रही हो!

सुरजन हत-बुद्धि सा हो गया था। वह उसी अवस्था में मछली के काँटे को भूमि पर रख कर पानी में उतर गया, और दोनों बाजुओं पर उस शव को उठा कर बाहर निकाल ले आया और भूमि पर रख दिया। सुरजन यह जान कर अधिक चमत्कृत-हो उठा, कि वह एक बीस-बाइस वर्षीया युवती है। गौर वर्ण, सुन्दर आकृति, और सुगठित शरीर! आँखें बन्द थीं। ज्ञात ऐसा हो रहा था, मानों प्रगाढ़ निद्रा में सो रही हो। सुरजन मंत्र-मुग्ध हो कर उसकी ओर देखने लगा। फिर उसकी चेतना ने उसे धक्का दिया। वह चैतन्य हो उठा और सोचने लगा, 'इसकी आकृति पर मृत्यु के तो कोई चिन्ह नहीं। शरीर भी तो कहीं क्षत-विक्षत नहीं है। रोगिणी सी भी नहीं लगती। शरीर के सम्पूर्ण अङ्ग

प्रत्यङ्ग स्वस्थ्य दीख रहे हैं। कहीं जीवित न हो।

सुरजन के मन मे एक आशा जागृत हो उठी। उसने शव के पास बैठ कर उसके बायें हाथ की नब्ज़ पर अपनी उँगुली रक्खी। नब्ज धड़क रही थी। सुरजन ने और भी अधिक ज़ोर से नाड़ी की नसों पर अपनी अंगुली दबा दी। नाड़ी अब और भी अधिक स्पष्ट हो चली। एक, दो, तीन, चार मिनट। सुरजन को अब विश्वास हो गया, कि वह मरी नहीं जीवित है। वह अपने विश्वास को दृढ़ बनाने के लिये अपनी हथेली उसकी नाक के पास ले गया। उष्ण निश्वास! सुरजन चिन्ता में पड़ गया। सोचने लगा, वह क्या करे? किस प्रकार उसे बचाये? अकेले वह कुछ कर नहीं सकता था? वह सहायता के लिये इधर-उधर दृष्टि पसार कर देखने लगा।

कुछ दूर पर एक वृद्धा जमुना से जल ले रही थी सुरजन ने उसे पहचान कर ज़ोर से पुकारा, "दादी! ओ दादी!" वृद्धा जल से भरा हुआ घड़ा तट पर रख कर इधर-उधर देखने लगी। सुरजन ने फिर ज़ोर से आवाज़ देकर कहा, "दादी! तुम्हीं को बुला रहा हूँ। जल्दी यहाँ आ।"

वृद्धा ने अपनी हथेली अपनी भौंहों पर टिका कर अपनी दृष्टि फेंकी। सुरजन को तो वह न देख सकी, किन्तु स्वर से वह पहचान गई, कि यह सुरजन का स्वर है। उसे यह ज्ञात भी था, कि सुरजन आज शहर नहीं गया है और उसने मछली

का काँटा लेकर सुरजन को जमुना की ओर आते हुये भी देखा था। वह अपनी भौंहों पर हाथ रखकर स्वर को लक्ष्य करके चल पड़ी।

कुछ दूर से ही सुरजन की एक झलक झलकी। वृद्धा बोल उठी, 'क्या है रे सुरजन! तू तो बीमार था न! फिर यहाँ क्या कर रहा है।'

'दादी!'...सुरजन बोल उठा—'मछली फँसाने आया था। सहसा देखा कि एक लाश जल के ऊपर तैर रही है। पहले तो मैंने उसे लाश ही समझा, किन्तु जब समीप से देखा, तब उसमें जीवन के लक्षण दिखाई दिये। उसे बाहर निकाल कर उसकी नाड़ी देखी। सचमुच वह जीवित है दादी! बड़े संयोग से तू यहाँ आ गई! जा, गाँव में जो-जो हों, उन्हें जल्दी से बुला ला! इसकी रक्षा के लिये शीघ्र उपाय करना है!"

सुरजन की बात समाप्त होने के पूर्व ही वृद्धा मच्छिंता के पास आ गई, और उसे इधर-उधर से देख कर बोल उठी, 'अरे यह तो जिन्दा मालूम होती है। जैसे किसी भले घर की लड़की हो।'

'हाँ दादी।' सुरजन ने अधीर हो कर कहा—'जा जल्दी गाँव में जो हों, उन्हें बुला ला। देर होने से कदाचित् उसके प्राण पखेरू उड़ जायँ। न जाने बेचारी कब से जल में बेहोश पड़ी थी।'

सुरजन अपनी बात समाप्त भी न कर पाया था कि उसने

देखा, उसकी दादी गाँव की ओर लपकी जा रही है। कुछ ही देर में दो-तीन वृद्ध पुरुष और इतनी ही स्त्रियाँ आ पहुँची। सुरजन सब की सहायता से मूर्च्छिता को एक टूटी हुई चारपाई पर लेटा कर अपने झोंपड़े में ले गया, और सब मिल कर अपने ढङ्ग से उसकी रक्षा के लिये तात्कालिक प्रयत्न करने लगे। पहले उस पर चीथड़े डालकर उसके शरीर को गर्म किया। फिर पायखाना कराने के लिये कुछ जड़ी बूटियाँ पीसकर पिलाईं।

मूर्च्छिता के नेत्र खुल गये। उसकी उखड़ी हुई साँसे अपनी नियमित गति से चलने लगीं। उसने अपनी आंखों को पसार कर इधर उधर चारों ओर देखा। मटमैले और श्यामवर्ण के कई छोटे-छोटे नग्न बच्चे खड़े थे, जो उत्सुकता-पूर्वक उसी की ओर निहार रहे थे। चारपाई के पास इधर-उधर दो-तीन वृद्धायें बैठी थीं, जिनके बाल सन की तरह श्वेत हो गये थे, और शरीर के अंग-प्रत्यंगो की चमड़ियां लटक गई थीं। एक वृद्ध पुरुष द्वार पर बैठकर चिल्ला रहा था। दूसरा चारपाई के पास सिल-बट्टे पर एक बूटी पीस रहा था। सुरजन उसके सिरहाने बैठकर प्रेम से उसके बालों को सहला रहा था।

मूर्च्छिता ने एक ही दृष्टि में उस झोपड़े और झोपड़े में बैठे हुए व्यक्तियों को देखा। फिर वह विचार-मग्न हो उठी। ऐसा लगा, मानों वह घटनाओं का तारतम्य ठीक कर रही ही। कुछ देर तक पूर्णरूप में आंखें बन्द कर पड़ी रही। तत्पश्चात् मन्द स्वर में बोल उठी, 'मैं कहा हूँ ?'

सुरजन सामने आ गया और अपने हृदय का सारा स्नेह उँडेल कर कहने लगा, 'तुम हम सब ग़रीबों के झोपड़े में हो बहन ! घबड़ाओ नहीं, भगवान ने अब तुम्हें बचा लिया है ।'

सुरजन के इस 'बहन' शब्द में उसके अंतर का संपूर्ण स्वाभाविक प्रेम था। मूर्च्छिता, जो अब होश में आगई थी, उस प्रेम से विभोर सी हो उठी। उसने सुरजन की ओर देखा। सुरजन की आंखों, और आकृति पर वस्तुतः भातृ-प्रेम बरस रहा था। पीड़िता की रग रग में उस प्रेम से जीवन संचरित हो उठा। वह अपनी पीड़ाओं को भूल गई। उसी समय के लिये नहीं, सदा-सर्वदा के लिये। सुरजन के अकपट स्नेह, और उसकी सेवाओं ने उसके मन में यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया, कि वस्तुतः सुरजन उसका भाई है, और ऐसा भाई है, जिसकी समानता के जगत में बहुत कम भाई मिलते हैं। पीड़िता धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगी।

उसे स्वस्थ होते देखकर सुरजन का मन प्रसन्नता से नाच उठता। सारा परिश्रम अब सुरजन का उसके स्वास्थ्य ही के लिये था। अपने विश्वास के अनुसार वह प्रति दिन प्रातःकाल उठकर जमुना में स्नान करने जाता, और जमुना के जल में खड़ा होकर सूर्य भगवान को जलांजलि देकर उनसे उसके स्वास्थ्य के लिये आशीर्वाद माँगता। नगर में जाकर अधिक से अधिक परिश्रम करता, और अधिक से अधिक पैसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता। जिस वस्तु को उसने अपने लिये कभी न खरीदा था, उसे

खरीद कर लाता, और पीड़िता को स्नेह से खिलाता। पीड़िता की सेवा और सुश्रुषा में सुरजन की हड्डियाँ गली जा रही थीं. किन्तु उसका मन हर्ष से नाच रहा था, कि पीड़िता स्वस्थ हो रही है !

उसका मन उस समय अधिक हर्ष से नाच उठा, जब उसे अपनी वृद्धा दादी से ज्ञात हुआ, कि पीड़िता गर्भवती है। जिस दिन सुरजन के कानों में यह समाचार पड़ा, उस दिन से वह और भी अधिक सतर्कता के साथ पीड़िता की सेवा करने लगा। वह उस दिन की प्रतीक्षा में एक एक घड़ी चिन्ता के साथ व्यतीत करने लगा, जब उसकी झोपड़ी नव-जात 'शिशु' के जीवन-संगीत से मुखरित हो उठेगी ! इस बीच में सुरजन ने उससे कई बार उसका नाम, गांव, और हाल जानने के लिये आग्रह किया। सुरजन जब कभी उससे पूछता, तब वह अधिक खिन्न हो उठती, और कह पड़ती, 'क्या करोगे जान कर भैया ! तुम्हारे लिये यही अच्छा है कि तुम मेरी पूर्व की कहानी को न जानो !'

सुरजन उसे खिन्न करना नहीं चाहता था। जब उसने देखा, कि उसे यह सब पूछने से कष्ट होता है तब उसने पूछना ही छोड़ दिया। पीड़िता ने अपना कुछ हाल सुरजन को न बताया, किन्तु सुरजन यह तो जान ही गया, कि वह पीड़िता है। उसकी आँखों में रहस्य और दयनीय जीवन का एक चित्र भी खेल गया। इसीलिये पीड़िता के प्रति उसके अन्तर के कोने-कोने

में और भी अधिक सहानुभूति जागृत हो उठी, और वह अपने आत्मिक प्रेम की वर्षा उस पर इतने समीप से करने लगा, कि पीड़िता के अन्तर का कोना-ही कोना नहीं, वरन् उस की आत्मा तक उसके प्रेम से सराबोर हो गई।

पीड़िता ने जब सुरजन को अपना नाम भी न बताया, तब सुरजन ने उसका स्वयं नामकरण किया, 'जमुना'। 'जमुना' ने उसे वरदान के रूप में दिया भी था। जमुना बेलदारों की उस छोटी सी बस्ती में, थोड़े ही दिनों में, जन-जन के हृदय में घर कर गई। उस की हँसी, उसकी मृदुता, उसका व्यवहार, और उस की सदाशयता, सबने उसे हृदय के ऊँचे आसन पर बिठा दिया। झोंपड़ी के कोने ही कोने में नहीं, हृदय के कोने-कोने में भी जमुना गूँज उठी, और उस दिन वह गूँज और भी अधिक सुस्वरित हो उठी, जब सुरजन की झोंपड़ी में जमुना ने एक बालिका को प्रसव किया।

बेलदारों की उस बस्ती में रहने वाले प्रत्येक जन ने सिर-आंखों पर उसे उठा लिया। उसका गौर वर्ण, बड़ी बड़ी आँखें, और सौन्दर्य पूर्ण आकृति! बेलदारों को ऐसा लगा, मानों उनकी बस्ती में स्वर्ग की कोई किरण उतर आई हो। सब ने मिल कर उसका नाम 'नीरा' रक्खा। यह इस लिये, कि उसकी माँ जमुना थी, और 'जमुना' जमुना के नीर से कढ़ी थी।

सुरजन की नीरा पर बड़ी बड़ी आशायें थीं, बड़ी बड़ी कामनायें थीं। किन्तु सुरजन अपनी कामनाओं की वाटिका को हँसती

हुई न देख सका। 'नीरा' की दस वर्ष कीं आयु होते-होते वह 'नीरा' और 'जमुना' का अंचल बेलदारों को पकड़ा कर आंसुओं से लदी हुई आँखों को लेकर स्वर्ग की ओर चल पड़ा। फिर भी 'नीरा' और 'जमुना' पूर्ववत्, बेलदारों के प्रेम की गोद में, उस बस्ती में रहती थी। अब नीरा सयानी हो चली थी और अन्य बेलदार स्त्रियों की भाँति उसका भी अपना एक पेशा था, नृत्य और संगीत।
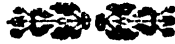
[५]

सन्ध्या ने काली चादर ओढ़ ली थी। अंधकार धीरे-धीरे फैल रहा था। रजनी बड़ी निपुणता से सन्ध्या की काली चादर में एक-एक करके हीरे की कनियाँ जड़ रही थी। आकाश पर एक ही एक तारे भी चमक रहे थे। प्रभात में चारों ओर दाने की खोज में निकले हुये पंछी अपने घोसले में लौट आये थे। दिन भर के थके-माँदे मजदूर-भी अपने अपने घर को लौट रहे थे। रजनी के आगमन ने सब के हृदय में अपने अपने घर की स्मृति उत्पन्न कर दी थी। और सब उल्लास के साथ अपने अपने घर की ओर लपके जा रहे थे।

नीरा भी एक हाथ में ढफली, और दूसरे हाथ में एक छोटी सी पोटली लेकर अपने झोपड़े की ओर बढ़ी जा रही थी। किन्तु उसका मन उदास था। उसके चित्त में एक वेदना नाच रही थी। सवेरे जब वह घर से चली थी, तब उस की मां

जमुना बीमार थी। उसका शरीर ज्वर से बहुत गर्म था। मां की स्मृति नीरा को रह-रह कर व्याकुल कर रही थी। वह मन ही मन सोच रही थी, न जाने अब मां का क्या हाल है? इस वेदना ने उसके पैरों में और भी अधिक प्रगति डाल दी थी, और वह डग बढ़ाती हुई झोंपड़े की ओर लपकी जा रही थी। दूसरा दिन होता तो नीरा अपने संगीत-स्वर से उस जन-शून्य पथ को ध्वनित कर देती, और घोसले में पंख फैला कर-सोने वाले पक्षियों को भी चहचहाने के लिये विवश कर देती, किन्तु आज तो उसे चुपचाप चलना ही अभीष्ट था।

झोंपड़े में पहुँच कर नीरा ने पोटली रख दी, और डफली खूँटी पर टाँग दी। ज्वर की गर्मी में सोई हुई जमुना पग-ध्वनि से चौंक पड़ी, और मन्द स्वर में कराहती हुई बोल उठी, 'कौन? बेटी नीरा?'

'हाँ मा, मैं ही हूँ'—कहती हुई नीरा जमुना के समीप जा पहुँची, और उसके शरीर पर हाथ रखकर बोल उठी, 'अब कैसा जी है माँ!' नीरा चारपाई पर जमुना के पास बैठ गई।

जमुना ने धीरे से अपना दाहिना हाथ उठाया। वह अपने हाथ को नीरा के सिर पर ले गई, और उसके बालों को सहलाती हुई बोल उठी, 'बेटी नीरा?'

'कहो माँ! –नीरा ने उदास और चिन्तित मुख से जमुना की ओर देखा। जमुना की आँखों में आँसू थे। वह अपने नेत्रों में अश्रु भर कर नीरा की ओर इस प्रकार देख रही थी, मानों

उसके अन्तर का संपूर्ण स्नेह उसकी आँखों में बह रहा हो। नीरा आकुलता के स्वर में बोल उठी, 'तुम रोती हो माँ ?'

'हां बेटी !—जमुना ने एक दीर्घ सांस ले कर उत्तर दिया,—वह, जो अपनी बेटी को निराश्रित छोड़ कर जा रही हो, रोयेगी न तो क्या करेगी ?'

'ऐसा न कहो मा !—नीरा ने आँखों से आँसू टपकाते हुये कहा—तुम अच्छी हो जावोगी माँ ! आखिर मैंने ईश्वर का क्या बिगाड़ा है ?'

'नहीं बेटी नीरा !—जमुना ने उसकी ठुड्डी पकड़ कर उत्तर दिया—अब कदाचित् मैं न बच सकूँगी ! अफसोस, तेरे हाथ पीले न कर सकी बेटी ! मरने पर भी यह इच्छा हृदय में कसकती ही रहेगी !'

नीरा जमुना के बाँह पर मुख रख कर सिसक सिसक कर रोने लगी। उसकी आँखों के गर्म आँसू बाँह से ढुलक कर वक्षःस्थल पर बह चले। वक्षः स्थल के अभिषिक्त होने के साथ ही साथ जमुना का अन्तर-अन्तर नीरा के आँसुओं से अभिषिक्त हो उठा। जमुना ने स्नेह से दूसरे हाथ से नीरा के मुख को ऊपर उठाया। नीरा की आंखें आंसुओं से लदी थीं। जमुना उसके आंसुओं को पोछती हुई बोल उठी—'बेटो धैर्य रक्खो, भगवान तुम्हारी सहायता करेंगे। संयोग की बात कौन जानता है ? कौन जानता था, कि सुरजन भैया हम दोनों को छोड़ कर चल देंगे ? सुरजन भैय्या की मृत्यु के पश्चात् यह जिन्दगी कितनी अन्धकार पूर्ण ज्ञात

होती थी, किन्तु इन सब के स्नेह से कभी सुरजन भैया की मृत्यु का अभाव अखरा ही नहीं। मानलो, यदि मैं मर भी गई नीरा, तो ये सब तो हैं हीं।'

जमुना कहते-कहते चुप हो गई। नीरा की आँखें छलाछल आंसू उगल रही थीं। ऐसा ज्ञात होता था, मानों जमुना की बातें उसके अन्तर को भेद कर बहुत दूर चली जा रही हों, और पीड़ा से नीरा का ब्रह्माण्ड तक गला जा रहा हो। जमुना कुछ देर तक मौन रहकर फिर बोल पड़ी, 'बेटी नीरा मेरे पास और कुछ तो है नहीं, कि मैं तुम्हें सौपूँ! मेरी मृत्यु के पश्चात् थाती स्वरूप मेरी दो बातों को अपने हृदय में रखना बेटी!'

नीरा को अब ऐसा लगा, मानों सचमुच अब उसकी मां उससे विलग होती जा रही है। वह विलख पड़ी, और उसके वक्षस्थल पर सिर रख कर सिसकने लगी। जमुना अपने गर्म हाथों से उसके मुख को ऊपर उठा कर कहने लगी, 'पगली यह समय रोने का नहीं है। धैर्य्य से काम ले और फिर मैं अभी मरी तो जा नहीं रही हूँ। मैं तो इसलिये कह रही हूँ कि कदाचित् मर जाऊँ! फिर अच्छा तो यही है, कि तुम से जो कुछ कहना है, अभी कह दूँ? इन सांसों का क्या ठिकाना। कौन जाने घड़ी के पुर्ज़े की भांति चलती चलती कब बन्द हो जायँ!'

नीरा के टूटे हुये हृदय को कुछ ढाँढ़स सा हुआ। जमुना के स्नेह मिश्रित आश्वासन ने उसके मन के भीतर एक शक्ति दौड़ा दी। वह अपनी आँखों को पोछकर जमुना की ओर देखने लगी।

जमुना पुनः उसके बालों में उँगुलियाँ डालकर उसका सिर सह-लाने लगी। कुछ देर तक जमुना इसी प्रकार उसके बालों को सहलाती रही। फिर बोल उठी, 'हाँ तो मैं तो तुमसे उन बातों को कहना ही भूल गई। इन बातों को तुम सदा अपने हृदय में रखना बेटी।'

नीरा विस्फारित नेत्रों से जमुना की ओर देखने लगी। झोपड़ी में जलते हुये धुँधले चिराग की ज्योति में जब नीरा ने जमुना की आकृति की ओर तन्मयता से देखा, तब उसे ऐसा लगा मानों सचमुच उसकी मां अपने जीवन भर की सम्पत्ति उसे सौंपना चाहती हो। नीरा आँखों में उत्कंठा भर कर जमुना की ओर देखने लगी। जमुना मन्दमन्द स्वर में कहने लगी, 'बेटी मेरी इच्छा थी कि मैं मरने के पूर्व तुम्हारा और वंशी का विवाह देख लेती। सुरजन भैय्या जब तुम छोटी सी थी, तभी तुम्हारी सगाई वंशी के साथ कर गये हैं। यदि मैं मर जाऊँ बेटी, तो तुम सुर-जन भैया के वचन का पालन करना। वंशी को छोड़ कर और किसी के साथ अपने जीवन की गाँठ न बाँधना। वंशी तुमसे अधिक प्रेम भी करता है।'

'एक दूसरी बात और है बेटी, और वह मेरी है। उसे सदा अपने हृदय में छिपाकर रखना, और उसी के रूप में मुझे स्मरण करना। देखना बेटी, कभी किसी शहरी, और रुपये वाले का विश्वास न करना.........। जमुना की आकृति पर एक औदार्य खेल गया। नीरा को ऐसा लगा, मानों इस अन्तिम बात

के कहते कहते उसकी मां का हृदय व्यथा से मथ उठा हो। वह आंखों में विस्मय भर कर अपनी मां की ओर देखने लगी। नीरा के ओठ खुल कर कुछ कहना ही चाहते थे, कि द्वार पर कोई बोल उठा, 'मौसी!'

जमुना और नीरा, दोनों ने आवाज़ सुनी। किन्तु नीरा चुप रही। जमुना बोल उठी, 'कौन बेटा, वंशी! आ, चला आ!'

वंशी गेंहुये रंग का एक स्वस्थ युवक था। जवानी उभड़ रही थी। नसें निखरी पड़ रही थीं। आंखों में, आकृति पर, रग-रग में, अंग-अंग पर, जवानी की ज्योति थी। गठा हुआ शरीर, भरी हुई आकृनि! झोपड़ी में प्रवेश करते ही उसने एक दृष्टि नीरा पर फेंकी। नीरा उदास-मुख जमुना के सिरहाने बैठी हुई थी। दूसरा दिन होता, तो नीरा अवश्य उसकी आंखों में आंख मिला कर हँस देती। किन्तु आज तो उसके हृदय के कोने-कोने में वेदना की आग लगी हुई थी, और उसे रोने के अतिरिक्त कुछ सूझता ही न था। वंशी ने एक ही दृष्टि में नीरा की वास्तविक स्थिति जान ली। फिर उसने जमुना के शरीर पर हाथ रखकर कहा, 'ज्वर तो बड़ा तेज़ है मौसी! इससे कहलवा क्यों नहीं दिया। कोई दवा-दारू हो रही है?'

'यह तो अभी आई है बेटा!—जमुना ने कराहते हुये उत्तर दिया—सबेरे जा नहीं रही थी, मैंने ही इसे शहर जाने के लिये विवश किया था। किन्तु जब से आई है, रो रही है। जाने दिन भर से कुछ खाया भी है, या नहीं!'

वंशी ने फिर एक दृष्टि नीरा की ओर डाली। नीरा की आंखें रोते-रोते आरक्त हो गई थीं। मुख मुरझाया हुआ था। इस बार नीरा ने भी वंशी की ओर देखा, किन्तु हँसने के स्थान पर आंखों ने आंसू उगल दिये। वंशी का मन पीड़ा से मथ उठा। उसके एक मन ने कहा, वह दुख से समाकुल नीरा को सान्त्वना दे। किन्तु जमुना का स्मरण आते ही उसका उभरा हुआ मन दब गया। उसने नीरा की ओर से अपनी दृष्टि हटा कर जमुना की ओर देखते हुये कहा, 'मौसी तू अपने स्वास्थ्य की चिन्ता कर। ज्वर बड़े वेग से चढ़ा हुआ है। बिना दवा-दारू किये यह न उतरेगा!'

'दवा-दारू तो बहुत की बेटा!–जमुना ने कराहते हुये कहा–दवा के रूप में जो कुछ घास-पात ज्ञात था, सब को तो पी डाला होगा। किन्तु किसी से कुछ लाभ न हुआ। जान पड़ता है, अब आखिरी समय समीप है। देखना बेटा, मेरे मरने के पश्चात् नीरा का ध्यान रखना!'

जमुना की आँखों में आँसू छलक आये। नीरा के नेत्रों से भी आँसुओं की धार बह चली। वंशी ने एक बार नीरा की ओर देखा, और फिर वह तत्क्षण बोल उठा, 'दिल छोटा न कर मौसी, अभी तू न मरेगी। ज्वर बिगड़ा हुआ है। साधारण दवाओं से वह न दूर होगा। कोई और उपाय करना चाहिये।'

'कोई और उपाय क्या करोगे बेटा!—जमुना ने पीड़ा के स्वर में कहा—क्या शहर से किसी बहुत बड़े डाक्टर को

लावोगे ! तुम जानते नहीं वंशी, शहर के डाक्टर ग़रीबों की झोपड़ियों में नहीं आते। वे ग़रीबों के प्राणों को मसल कर रुपयों पर चलते हैं। उन्हें रुपया चाहिए, रुपया, और यहाँ सब की झोपड़ियों में खोज डालो, डाक्टर को फीस भी तो देने के लिये रुपया नहीं मिलेगा।'

जमुना उत्तेजित हो उठी। उसकी साँसें ज़ोर से चलने लगीं। वंशी कुछ देर के लिये मौन हो गया। फिर बोल उठा, 'मौसी अपने लिये नहीं तो, हम सब के लिये तो अपने शरीर की चिन्ता कर। मैं जानता हूँ मौसी, डाक्टरों के लिये रुपया ही प्रमुख वस्तु है। किन्तु कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। मैं जाता हूँ मौसी, किसी-न किसी डाक्टर को अवश्य लाऊँगा।'

जमुना और भी अधिक उत्तेजित हो उठी। उसकी सांसें और भी अधिक गति के साथ चलने लगीं। वह आवेग में चारपाई पर उठ कर बैठ गई, और खाँस कर कहने लगी, 'न बेटा, वंशी, तू इस समय शहर न जा। तू जानता नहीं बेटा, शहर के आदमी बड़े निर्दय होते हैं। दया, सहानुभूनि, और करुणा प्रदर्शित करना तो दूर की बात, मनुष्य की मानवता को मसल डालने में उन्हें बिलकुल संकोच नहीं होता।'

वंशी ने जमुना को पकड़ लिया। जमुना पसीने से लथ-पथ हो गई थी। वंशी उसे चारपाई पर लिटा कर पंखा झलने लगा, और फिर कुछ देर के बाद बोल उठा—'मौसी, तुम्हें मेरी सौगन्ध, जो इस अवस्था में इस प्रकार बात चीत कर। मैं

जानता कि शहरों के व्यक्ति स्वार्थी होते हैं, किन्तु सभी एक समान नहीं होते मौसी इसी दिल्ली में एक डाक्टर साहब रहते हैं, जो केवल ग़रीबों की ही चिकित्सा करते हैं। मैं जाता हूँ, और उन्हें अवश्य लाऊंगा।'

जमुना पुनः कुछ कहने के लिये सतेज हो उठी। किन्तु वंशी ने कुछ कहने के पूर्व ही अपनी शपथ दिला कर उसका मुँह बन्द कर दिया। फिर उसने नीरा की ओर दृष्टि पात करके कहा, 'देखना मौसी का ध्यान रखना। मैं शहर जाता हूँ। दो-ढाई घंटे में लौट आऊँगा।'

जमुना और नीरा, दोनों में किसी को यह स्वीकार न था, कि वंशी इतनी रात गये शहर जाय, और वह भी बिना रुपया के डाक्टर लेने के लिये, किन्तु जमुना और नीरा पर अपने प्रेम की प्रगाढ़ता प्रगट करने के लिये वंशी को इससे अच्छा अवसर और कब मिलता! वह जमुना, और नीरा, दोनों ही का मुँह अपनी शपथों से बन्द कर झोपड़ी से निकला और शहर के मार्ग में अंधकार में अदृश्य हो गया।

[६]

चाँदनी रात थी। ग्यारह बज रहे थे। सड़कों पर चलने वाले मोटरों, गाड़ियों और मनुष्यों की संख्या धीरे धीरे कम हो चली थी। ऐसा लगता था, मानों रजनी ने सबकी आँखों में गहरी शराब छिड़क दी हो, और सब सोने के लिये अपने अपने घरों में घुस गये हों। पुलिन ने भी भार से लदे हुये मन से अस्पताल में प्रवेश किया। उसके हृदय पर एक चिन्ता का बोझ था, मन में एक गहरी वेदना थी। वह उस चिन्ता और वेदना से बचने के लिये ही चुप चाप अस्पताल में ही जाकर सो जाना चाहता था, किन्तु जब वह सीढ़ियों को लाँघ कर अस्पताल के बाहरी बरामदे में पहुँचा, तब उसने देखा, एक व्यक्ति घुटनों में मुँह डाल कर ऊँघ रहा है।

पुलिन रुक गया और उसने पूछा, कौन है ?

वह व्यक्ति शीघ्रता से उठकर खड़ा हो गया और पुलिन

को दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते करता हुआ बोल उठा, 'मैं हूँ वंशी, डाक्टर बाबू !'

उसने यह बात इस ढंग से कही, मानों पुलिन उसे जानता हो। किन्तु उसे स्वयं ज्ञात था, कि पुलिन उसे नहीं जानता। वह कह गया, केवल अपने हृदय की सरलता और स्वाभाविकता के कारण, और जब पुलिन ने पूछा कि 'कौन है' तब अपना नाम बताने के अतिरिक्त वह दूसरा उत्तर ही क्या दे सकता था? वंशी का हृदय धड़कने लगा। उसने पुलिन को देखा था, और उसके संबन्ध में बहुत कुछ सुना भी था, किन्तु व्यवहार रूप में कभी पुलिन उसके जीवन में न आया था। वंशी एक ही सांस में सोच गया, 'जाने क्या डाक्टर बाबू कहें! कहीं क्रोध में आकर बरामदे से बाहर न निकाल दें।' जमुना ने चलते समय शहरी व्यक्तियों का जो चित्र खींचा था, वह भी वंशी की आँखों के सामने दौड़ गया। किन्तु वंशी अधिक देर तक अपने भावों में उलझने न पाया, और पुलिन पूछ बैठा, 'कौन वंशी? कहाँ रहते हो? क्या काम है?'

पुलिन के स्वर में कुछ रुक्षता थी, और उस रुक्षता का कारण यह था, कि उसका हृदय भार से दबा जा रहा था। वह शीघ्र से शीघ्र पलङ्ग पर जा कर पड़ कर सो जाना चाहता था। वंशी का हृदय काँप उठा। वह एक बार सहमा और फिर उसी रूप में हाथ जोड़े ही जोड़े कहने लगा, 'मैं हूँ एक ग़रीब आदमी डाक्टर बाबू! मेरी मौसी बहुत बीमार है। कई दिन से ज्वर से छटपटा

रही है। आपका नाम सुन कर आया हूँ। आप उसे चल कर बचा लें डाक्टर बाबू! आपको बड़ा पुण्य होगा!'

वंशी की आँखों में आँसू झलक आये। उसका गला अवरुद्ध हो उठा। पुलिन सजग हो पड़ा। उसके अन्तर में कर्तव्य की लहरें हिलोरे मारने लगीं। चिन्ता, औदास्य, और वेदना का स्थान जीवन ने ले लिया। कुछ देर तक सोचता रहा। फिर बोल उठा, 'कहाँ चलना पड़ेगा वंशी! सवारी का रास्ता है?'

हाँ डाक्टर बाबू!–वंशी ने उत्तर दिया—कुछ दूर तक सवारी जाती है, किन्तु कुछ दूर श्रीमान को पैदल चलना पड़ेगा। यहीं दो डेढ़ मील पर जमुना के किनारे वेलदारों की एक छोटी सी बस्ती है। हुजूर बहुत बीमार है मौसी। बेचारी का अब तब लगा है।

'आकुल न हो वंशी!—'पुलिन ने सान्त्वना के स्वर में कहा—भगवान भला ही करेंगे। बैठ जाओ, मैं अभी तुम्हारे साथ चलता हूँ।'

पुलिन वंशी को बैठाल कर भीतर घुस गया। उसने हाथ मुँह धोया, कपड़े बदले और फिर अपना चिकित्सा का छोटा बाक्स हाथ में ले कर कमरे के बाहर निकल आया। वंशी को आशा नहीं थी, कि पुलिन बाबू इतनी शीघ्रता के साथ तैयार हो कर बाहर आ जायँगें। इसी विचार से वंशी बाहर पड़ी हुई बेंच पर लेट गया था। अतः जब पुलिन ने बाहर आकर कहा, 'चलो वंशी' तब वंशी चकपका कर उठ बैठा, और थोड़ी देर के लिये

मंत्र-मुग्ध सा हो गया। फिर उसने आगे बढ़ कर पुलिन के हाथ का चिकित्सा बाक्स अपने हाथ में लेकर कहा, 'चलिये डाक्टर बाबू; भगवान आपका भला करेंगे।'

आगे-आगे पुलिन और पीछे-पीछे बंशी चल पड़ा। कुछ दूर चल कर पुलिन ने एक ताँगा पकड़ा। दोनों ताँगे पर बैठ गये। तांगा चल पड़ा। धीरे-धीरे शहर समाप्त हुआ, और तांगा नगर के बाहर जमुना की ओर सड़क पर चलने लगा। एक स्थान पर पहुँच कर वंशी बोल उठा—अब यहीं से पैदल चलना पड़ेगा डाक्टर बाबू! बस, अब थोड़ी ही दूर है।

पुलिन तांगे वाले को रोक कर उतर पड़ा और तांगे वाले को वहीं ठहरने का आदेश देकर वंशी के साथ-साथ चल पड़ा। चाँदनी हँस रही थी। बहुत दूर तक, जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी, दुग्ध की धारा सी बहती हुई दिखाई दे रही थी। पुलिन को दुग्ध की उस धारा में वंशी के साथ बहते हुये एक विचित्र आनन्द आया। वह उसी आनन्द में डूब कर वंशी से पूछ बैठा, 'तुम्हारी मौसी कब से बीमार है वंशी!

आज कई दिन हो गये डाक्टर बाबू!—वंशी ने उत्तर दिया—अब तक घास पात पीती रही। पर उससे कुछ भी लाभ न हुआ। बेचारी को और कोई नहीं है डाक्टर बाबू!

क्यों, क्या कोई लड़का-वड़का नहीं है—पुलिन ने सहृदय हो कर पूछा।

नहीं, डाक्टर बाबू!—वंशी ने उत्तर दिया—केवल एक

लड़की है। दोनों माँ-बेटी, किसी प्रकार मिहनत-मज़दूरी करके अपना काम चलाती हैं।

और तुम उसके कौन हो वंशी!—पुलिन ने उससे पूछा।

हम सब उसे मौसी कहते हैं सरकार!—वंशी ने उत्तर दिया—वंशी कुछ और कहना चाहता था, किन्तु संकोच के कारण उस का मुख बन्द हो गया। अब पुलिन बोलने ही वाला था, कि वंशी उसके बोलने के पूर्व ही बोल उठा, लीजिये पहुँच गये सरकार!

पुलिन मन ही मन कुछ सोच रहा था। वंशी की बात से उस की विचार धारा भंग हो गई। उसने आँख उठा कर देखा, सामने वाटिका में कुछ धूमिल-धूमिल झोपड़े दिखाई दे रहे थे। झोपड़ों के चारों ओर सन्नाटा खेल रहा था। पद ध्वनि से बस्ती में सोये हुये कुत्ते भूँक उठे। वंशी पुलिन को लेकर अब तक बस्ती में पहुँच गया। वंशी कुत्तों को पुचकारता हुआ एक के पश्चात् एक झोपड़े के पार करने लगा. और एक झोपड़े के द्वार पर बोल उठा,—मौसी डाक्टर बाबू आये हैं।"

झोपड़े के भीतर धूमिल चिराग़ जल रहा था। नीरा और जमुना, दोनों ही नीद में थीं दोनों में किसी को विश्वास न था कि वंशी शहर जाकर डाक्टर ला सकेगा। क्योंकि दोनों को यह अच्छी तरह ज्ञात था, कि डाक्टर-बिना फीस लिये हुये नहीं आ सकते। अतः जब वंशी ने आवाज़ दी, तब नीरा

अचकचा कर उठ बैठी। जमुना भी कराहती हुई बोल पड़ी, 'कौन बेटा वंशी, आवो न।'

वंशी पुलिन को द्वार पर खड़ा कर भीतर गया, और वहाँ झोपड़े में पुलिन के बैठने के लिये एक पीढ़े का प्रबन्ध कर बाहर आया, और फिर उसे भीतर ले गया। सिरकियों का बना हुआ बहुत ही साधारण झोपड़ा था। गृहस्थी के टूटे-फूटे दो-चार-मटमैले सामान पड़े थे। मिट्टी का बना हुआ एक धुँधला दीपक जल रहा था, जो एक घड़े पर रक्खा हुआ था। बीच में चारपाई पड़ी थी, जिस पर जमुना सोई थी और जो कभी कभी कराह उठती थी। चारपाई के पास ही चिथड़े का एक बिस्तर पड़ा था, जिस पर गौर वर्ण की सौन्दर्य से जगमगाती एक किशोरी बालिका बैठी थी जिसकी आकृति पर और नेत्रों में नींद के स्पष्ट चिन्ह थे। पुलिन जब झोपड़े के भीतर घुसा, तब एक ही दृष्टि में उसने झोपड़े को देख लिया। फिर उसकी दृष्टि बालिका पर जाकर केन्द्रित हो गई। बालिका को देखते ही उसे ऐसा लगा, मानों स्वर्ग की कोई देवी इस झोपड़े में उतर आई हो, और रोगिणी के पास बैठ कर उसके प्राणों की रक्षा कर रही हो। पुलिन बालिका को देखने लगा। उसके अन्तर-अन्तर में आश्चर्य का एक सागर-सा दौड़ गया। वह थोड़ी देर के लिये किंकर्तव्य विमूढ़ सा हो गया। बालिका भी पुलिन को देखती हुई उठ कर खड़ी हो गई थी। वंशी इसी समय बोल उठा, 'डाक्टर बाबू, पींढ़े पर बैठ जाइये!'

पुलिन सजग हो उठा। उसने अपनी दृष्टि बालिका पर से, जो नीरा थी, रोगिणी की तरफ की और फिर शीघ्रता से बोल उठा, 'कोई आवश्यकता नहीं वंशी, मैं अब तुम्हारी मौसी को देखता हूँ। भगवान चाहेंगे तो बहुत शीघ्र तुम्हारी मौसी अच्छी हो जायगी!'

पुलिन ने सर्व प्रथम रोगिणी की नाड़ी देखी, और फिर कानों में यंत्र लगा कर उसकी सांसों की परीक्षा की। फिर कुछ देर के पश्चात् बोल उठा, 'वंशी घबड़ाओ नहीं, तुम्हारी मौसी बहुत शीघ्र अच्छी हो जायगी। मैं दवा दे रहा हूँ।'

पुलिन ने बाक्स खोलकर चार-पांच पुड़ियां दवा बनाईं। दवा की एक मात्रा पुलिन ने अपने हाथ से रोगिणी को खिलाई और फिर दवा, तथा रोगिणी के खाने-पीने के सम्बन्ध में कुछ आदेश देकर पुलिन बोल उठा,—'वंशी अच्छा हो, तुम अपनी मौसी को मेरे अस्पताल में पहुँचा दो। तीन ही चार दिन में यह वहां अच्छी हो जायगी!'

किन्तु वंशी के बोलने के पूर्व ही जमुना बीच में बोल उठी, 'नहीं डाक्टर साहब, मैं आपके अस्पताल में न जाऊंगी। शहर में जाना न जाने क्यों मुझे अच्छा नहीं लगता। आप मुझे यहीं रहने दें। जो भाग्य में होना होगा, होगा!'

पुलिन जमुना की ओर आकर्षित हो उठा। उसके शरीर का रंग, बातचीत करने का ढंग, उसके भाव, उसकी भाषा, सब कुछ तो वंशी से भिन्न था। पुलिन कभी जमुना की ओर

देखता, और कभी नीरा की ओर। तीनों में उसे बेहद असमानता दृष्टिगोचर हो रही थी। पुलिन का मन भीतर ही भीतर कह उठा, 'अवश्य ये मां-बेटी इन बेलदारों के वंश की नहीं हैं। फिर ये आगईं कहां से, कौन जाने ?' पुलिन रोगिणी की ओर देखता हुआ कुछ विचार-मग्न हो उठा। किन्तु रोगिणी पुनः बीच ही में बोल उठी, 'डाक्टर बाबू आपने बड़ा कष्ट किया। हम आपका क्या स्वागत करें ! आपका स्वागत करने के लिये बातों के अतिरिक्त हमारे पास है ही क्या ?' फिर नीरा की ओर देखकर जमुना कह उठी, 'अरे नीरा डाक्टर साहब को एक लोटा ठंडा जल तो पिलादे।'

पुलिन की आंखें पुनः नीरा की ओर जा पड़ीं। पुलिन ने देखा, नीरा आंखों में आश्चर्य भर कर उसी की ओर देख रही थी। 'नीरा' नाम पुलिन को बहुत ही मधुमय ज्ञात हुआ। पुलिन को ऐसा लगा, मानों दोनों अक्षर उसके कानों से उतर कर उसके अन्तर-अन्तर में समा गये हों। साथ ही पुलिन को इस नाम से कुछ अधिक आश्चर्य भी हुआ और उसकी यह भावना अधिक दृढ़ हो गई, कि ये मां-बेटी, दोनों ही इन बेलदारों के वंश की नहीं हैं।

पुलिन ने देखा, नीरा जल के लिये एक पात्र उठा रही है। सहसा पुलिन को स्मरण हो आया, कि उसे रोगिणी की बात का कुछ उत्तर देना है। और वह बोल उठा, 'नहीं-नहीं, आप इसकी चिन्ता न करें। मेरा स्वागत इसी में है, कि आप अच्छी हो जायँ।'

जमुना को ऐसा लगा, मानों पुलिन मानव रूप में देवता हो। एक बार बहुत पहले सुरजन के 'बहन' सम्बोधन से जमुना के हृदय में जैसी संतृप्ति उत्पन्न हुई थी, वैसी ही संतृप्ति का आज पुनः उसे अनुभव हुआ। जमुना आँखों में संतृप्ति भर कर पुलिन की ओर देखने लगी, और मन ही मन सोचने लगी, 'जिस शहर को वह घृणा की दृष्टि से देखती है, क्या उस में पुलिन ऐसे भी व्यक्ति होते हैं!'

पुलिन रोगिणी को अपनी ओर देखता हुआ देख कर बोल उठा, 'अच्छा अब आप सो जायँ! मैं जाता हूँ। कल फिर आऊँगा!'

रोगिणी पुलिन की ओर देखती रही और पुलिन अपना चिकित्सा—बाक्स उठा कर बाहर निकल आया। बाहर चांदनी छिटकी थी। और उस चांदनी में झोपड़ी के द्वार पर ही नीरा हाथ में जल का पात्र लिये हुये खड़ी थी। चांदनी रात वैसे ही ठंडक बरसा रही थी। पुलिन को प्यास क्या लगती? किन्तु फिर भी उसने नीरा की ओर दृष्टिपात करके नीरा के हाथ का जल-पात्र ले लिया, और इच्छा न होने पर भी कुछ जल पी गया।

पुलिन जब जल पी चुका, तब उसने देखा, वंशी उसका चिकित्सा—बाक्स लिये हुये खड़ा था। पुलिन ने फिर एक दृष्टि नीरा पर डाली। नीरा चुप चाप खड़ी थी। पुलिन बोल उठा, 'चलो वंशी अब चलें!'

नीरा ने दोनों हाथ जोड़े, और उसके ओठों से नमस्ते शब्द फूट पड़ा। पुलिन अपने मुख से नहीं, अपने हृदय से उसे स्वीकार कर वंशी के साथ साथ चल पड़ा। सड़क पर पहुंच कर पुलिन तांगे पर बैठा, और इधर वंशी ने हाथ जोड़े। पुलिन का ताँगा चल पड़ा। किन्तु कौन कह सकता है, कि पुलिन का मन भी उसके साथ-साथ चल रहा था।

[७]

दोपहर खेल रहा था, धूप तीव्र हो चली थी। पशु-पक्षी, मनुष्य, सभी में अर्द्ध विश्राम की भावना जागृत हो चली थी। सब अपने अपने स्थानों में भोजन और स्नान करने में व्यस्त थे। सड़क की चहल-पहल भी कुछ कम हो चली थी। पुलिन के अस्पताल में अब नये रोगी भी नहीं आ रहे थे। सबेरे से लेकर और अब तक जितने रोगी आये थे, पुलिन सब को देख कर उनके लिये नुसखा लिख चुका था। पुलिन कुछ देर तक नये रोगी की प्रतीक्षा में बैठा रहा, तत्पश्चात् घड़ी की ओर देख कर अपने भीतरी कमरे में चला गया. और कुर्सी पर बैठ कर सबेरे का अखबार पढ़ने लगा।

अभी कुछ ही क्षण बीत पाये थे, कि किसी की पद-ध्वनि से पुलिन ने अपनी आँखों के सामने से समाचार पत्र हटा कर द्वार की ओर देखा। द्वार पर नीरा खड़ी थी। नीरा अब प्रायः पुलिन के अस्पताल में आया जाया करती थी। पुलिन भी अब

तक न जाने कितनी बार बेलदारों की उस छोटी सी बस्ती में हो आया था। पुलिन एक बार नित्य ही उस छोटी सी बस्ती को देखता। न जाने क्यों, जब तक वह एक बार वहाँ न जा लेता, उसके मन में एक उचाट रहती, एक व्याकुलता नृत्य करती। पुलिन अपने व्यवहार से बेलदारों के स्त्री, बच्चों, और पुरुषों के हृदय में घर कर गया था। उसने जिस प्रकार तन्मयता से जमुना की चिकित्सा की थी, उसे देख कर बेलदार आश्चर्य चकित हो उठे थे, और अब भी वह जिस प्रकार समय असमय पर बेलदारों के कुटुम्बियों की चिकित्सा कर रहा था, उसे देख-देख कर बेलदार उसे किसी देवता से कम न समझ रहे थे। जहां कोई बीमार होता, और पुलिन को खबर होती, पुलिन तुरन्त दौड़ा जाता। पुलिन जब गाँव में जाता, तो गाँव के छोटे छोटे काले, धूमिल और मटमैले रंग के बच्चे पुलिन को घेर कर खड़े हो जाते, और 'डाक्टर बाबू, 'डाक्टर बाबू' कह कर तालियाँ पीट कर नाच उठते। पुलिन उन सब को मिठाइयाँ देता, और मीठे मीठे फल खिलाता। एक प्रकार से उस छोटी बस्ती, और बस्ती के मनुष्यों से पुलिन को स्नेह हो गया था। इस स्नेह में पुलिन की प्रकृति तो थी ही, किन्तु प्रकृति से भी अधिक नीरा और जमुना का आकंषरण था।

नीरा भी पुलिन की ओर अब शनैः शनैः आकर्षित होने लगी थी। पुलिन का अकपट प्रेम, उसकी सदाशयता, और

उसका सौंदार्य। सब मिल कर नीरा के मन को बाँध रहे थे। नीरा के मन में एक उत्कण्ठा ने भी जन्म ले लिया था, और वह थी पुलिन को देखने की। किन्तु जमुना का मन सदैव पुलिन की ओर से सशंक ही रहता। यद्यपि जमुना ही के ऊपर पुलिन के अधिक उपकार थे। और वह उसे हृदय से स्वीकार भी करती थी, किन्तु तो भी वह न जाने क्यों उस मठे को फूँक-फूँक कर पी रही थी। पुलिन जब उस गांव में आता, उससे मिलता, नीरा की ओर देखता, और कभी उससे बात भी कर लेता, तो जमुना का हृदय धड़क उठता। उसे ऐसा लगता, मानों उसके हृदय पर कोई कर्कश प्रहार कर रहा हो। कभी कभी वह इसी प्रहार से तिलमिला कर सोच भी जाती, 'पुलिन अच्छा मनुष्य तो है, किन्तु शहरी युवक है!' फिर उसे तत्क्षण नीरा का ध्यान आ जाता। और साथ ही पुलिन की ओर से उसके मन में एक औदास्य भी जाग उठता था। जमुना भर सक पुलिन के सामने अपने मन के औदास्य को दाब रखने का प्रयत्न करती। किन्तु फिर भी वह कभी-कभी किसी रूप में दबी गति से उभड़ ही आता था। पुलिन ने पहले तो उस की ओर लक्ष्य न किया, किन्तु पश्चात् उसे यह ज्ञात ही हो गया, कि जमुना शहरियों को घृणा की दृष्टि से देखने के साथ ही साथ उसे भी संदेह की दृष्टि से देखती है। किन्तु क्यों, यह पुलिन प्रयत्न करने पर भी न जान सका।

किन्तु जमुना के सशंकित होने पर भी नीरा पुलिन की ओर खिंचती ही जा रही थी। वह जब शहर जाती, तब अवश्य एक बार पुलिन के अस्पताल में जाती। पुलिन उसे बिठालता, उससे बातें करता, और उसकी बातें सुनता। नीरा को देखते ही पुलिन की आँखें हँस उठतीं। आँखें ही नहीं, उसके अन्तर का कोना-कोना भी विहँस उठता। उसे ऐसा लगता, मानों उसके अन्तर में 'संसार की बहुत बड़ी संतृप्ति डोल गई हो। नीरा को देख लेने के पश्चात् फिर उसे कुछ देखने की इच्छा न रह जाती, और उसे सन्निकट पाकर फिर उसे किसी की दूरी का अभाव न' अखरता!

नीरा को देखते ही पुलिन चहक उठा. 'आवो बैठो नीरा!' नीरा टेबुल के पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई। पुलिन अख-बार टेबुल पर रख कर नीरा की ओर देखने लगा, और फिर बोल उठा, 'कहाँ से आ रही हो नीरा!'

'वही चाँदनी चौक से-नीरा ने उत्तर दिया।

'कितने पैसे ले आई!—पुलिन ने गम्भीर होकर पूछा।

यही दस-बारह आने मिले हैं—नीरा ने अल्हड़ता के साथ उत्तर दिया।

पुलिन गंभीर हो उठा। उसने एक बार नीरा के सौन्दर्य की ओर देखा, और उसके वेश की ओर। उस मटमैले वेश के भीतर से नीरा का सौन्दर्य धूमिल दीपक की ज्योति की भाँति जग मगा रहा था। पुलिन चिन्ता-मग्न होकर कुछ देर तक

सोचता रहा। फिर नीरा की ओर देखता हुआ बोल उठा, 'नीरा, एक बात पूछूँ, बताओगी !'

पूछिये डाक्टर बाबू !—नीरा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से पुलिन की ओर देखते हुये कहा।

नीरा !—पुलिन ने अपनी आँखों में गंभीरता का भाव भर कर कहा—तुम प्रति दिन शहर में आती हो, और नाच-गा कर दिन भर में रुपये-बारह आने पैसे प्राप्त करती हो। यदि कोई तुम्हें इससे अधिक पैसे प्रति दिन दे दिया करे, तो क्या तुम बाज़ार में नाचना-गाना बन्द कर दोगी !

नीरा पुलिन की ओर देखने लगी। नीरा को ऐसा लगा, कि पुलिन को उसे शहर में नाचते-गाते हुये देख कर अधिक कष्ट होता है। पुलिन की इस आन्तरिक सहानुभूति से नीरा का मन दब गया। वह विचार मग्न हो उठी। पुलिन पुनः बोल उठा, मैंने तुमसे जो पूछा, उसका उत्तर दो नीरा !

हम ग़रीब हैं डाक्टर बाबू !—नीरा के स्वर खुल पड़े-हमारे लिये यही अच्छा है, कि हम अपने परिश्रम से पैसे पैदा करें, और हमारी मां ऐसे पैसे को लेने से रोकती है, जो परिश्रम से न पैदा किया गया हो। वह कहती है, संसार के लोग इस प्रकार के पैसे देकर ग़रीबों की आत्मा पर डाका डालते हैं। मैंने उस दिन इसी लिये आपका पाँच रुपये का नोट लौटाल दिया था।

तुम्हारी माँ क्यों ऐसा कहती है नीरा !—पुलिन बोल उठा।

यह तो मैं नहीं जानती पुलिन बाबू !—नीरा ने पुलिन की

ओर देखते हुये कहा—किन्तु मेरी माँ को शहर वालों, और अमीरों से बड़ी घृणा है। वह प्रायः मुझसे कहा करती है, कि अधिक पैसे देने का अर्थ यह होता है, कि वह तुमसे कोई बहुत बड़ी चीज़ मांग रहा है।

पुलिन विचार मग्न हो उठा। नीरा ने अपनी माँ की कही हुई बात जो अभी कही थी, उसमें पुलिन को एक बहुत बड़ी उच्चता दिखाई देने लगी। पुलिन कुछ देर तक मन ही मन नीरा की बातों पर विचार करता रहा। फिर बोल उठा, तुम्हारी माँ क्या पढ़ी लिखी है नीरा ?

हां पुलिन बाबू !—नीरा ने उत्तर दिया—उसके पास एक रामायण की किताब है। वह उसी को पढ़ा करती है। कभी-कभी गाँव की सभी स्त्रियों को एकत्र कर उसे पढ़ कर सब को सुनाया भी करती है।

पुलिन पुनः मन ही मन कुछ सोचने लगा, और फिर कह उठा, 'तुमने क्यों नहीं पढ़ा नीरा ?'

मैं कैसे पढ़ती डाक्टर बाबू !—नीरा ने कहा—मां ने पढ़ना लिखना सिखाया ही नहीं। होश संभालते ही गांव की लड़कियों के साथ नाचने गाने लगी, और जब कुछ और बड़ी हुई तो जीविका पैदा करने की चिन्ता सामने आ गई। मां ने भी कभी न रोका। नाचना-गाना सीखा था, और अब बराबर नाचती ही गाती चली जा रही हूँ।

पुलिन पुनः विचार मग्न हो उठा। जैसे वह कुछ कहना

चाहता हो और उसके लिये क्षेत्र तैयार कर रहा हो। पुलिन कुछ देर तक चुप रहा। फिर नीरा की ओर देख कर कहने लगा, क्या तुम्हारे भी मन में कभी पढ़ने-लिखने की इच्छा उत्पन्न होती है नीरा !

होती है क्यों नहीं पुलिन बाबू !—नीरा बोल उठी—पर हम ग़रीब को भला कौन पढ़ा सकता है, और फिर पढ़ने-लिखने के लिये यहाँ अवकाश कहाँ है ? पढ़ने-लिखने में लगूं, तो रोटी कैसे कमाऊँ ? पढ़ना-लिखना ग़रीबों के भाग्य में नहीं होता डाक्टर बाबू !

नीरा ने यह बात इस ढंग से कही, मानों वह पढ़ना लिखना चाहती है, किन्तु अपनी परिस्थिति से विवश है। पुलिन सहानुभूति के स्वर में बोल उठा, तुम ठीक कहती हो नीरा, जीविका की चिन्ता में प्रति क्षण घुलने वाले ग़रीबों के सामने बड़ा विकट प्रश्न होता है। बेचारे इस प्रश्न में इतने उलझे रहते हैं, कि जीवन के और कुछ काम ही नहीं कर पाते।

हाँ पुलिन बाबू !—नीरा पुलिन की सहानुभूति से बल पाकर बोल उठी—मेरा भी पढ़ना-लिखना केवल इसी लिये नहीं हुआ।

किन्तु यदि तुम चाहो तो पढ़ सकती हो नीरा !—पुलिन ने कहा।

किस प्रकार डाक्टर बाबू !—नीरा पुलिन की ओर देखती हुई पूछ बैठी !

बड़ी सरलता के साथ नीरा !—पुलिन ने सकुचाते हुये कहा—तुम प्रति दिन यहाँ आती ही हो। मेरे पास दो-तीन घंटे के लिये बैठ जाया करो। मैं तुम्हें तीन-चार महीने में पढ़ा दूँगा। तीन-चार महीने में तुम अखबार और किताब पढ़ने लगोगी।

नीरा ने पुलिन की ओर देखा। पुलिन अपनी बात समाप्त कर उत्तर के लिये नीरा की ओर देख रहा था। नीरा सोचने लगी। उसने कुछ ही क्षण में अपने मन में कई चित्र बनाये, और उसे बिगाड़ डाले। आखिर वह उलझ कर बोल ही पड़ी, यह तो ठीक है डाक्टर बाबू, किन्तु यदि पढ़ने लिखने में ही समय गवाँ दूंगी, तो फिर-जीविका का क्या होगा!

तुम भूल रही हो नीरा !—पुलिन ने उसके मन को उत्तेजित करते हुये कहा—कुछ दिनों तक तुम्हें कष्ट अवश्य होगा, किन्तु यदि तुम पढ़-लिख लोगी, तो बड़े सुख का जीवन बिताओगी, और फिर यदि तुम बुरा न मानो तो मैं तुम्हारी जीविका का भी प्रबन्ध कर दूँगा।

पुलिन कह तो गया. किन्तु उसके मन में एक सन्देह जागृत हो उठा। कहीं नीरा उसकी इस बात का कुछ और अर्थ न समझ ले, और उसके प्रस्ताव को अस्वीकार न कर दे। किन्तु नीरा के मन में वस्तुतः पढ़ने का लोभ था। वह प्रायः अपने पढ़ने के सम्बन्ध में मन ही मन कल्पना किया करती थी। अतः आशंकित होने पर भी पुलिन को उसके मन को उतारने

में सफलता मिल गई, और वह पुलिन के कथनानुसार इस बात के लिये तैयार हो गई, कि वह पुलिन से प्रति दिन पढ़ा करेगी, और पुलिन उसकी जीविका के लिये उचित पैसे का भी प्रबन्ध कर देगा, किन्तु वह अपनी मां से न कहेगी।

प्रतिज्ञा में आबद्ध होने पर नीरा का मन पत्ते की भाँति काँप रहा था, किन्तु पुलिन के मन में पंख लग गये थे और वह अनन्त आकाश की छोर ढूँढ़ रहा था।
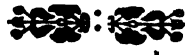
[८]

रात के ग्यारह बज रहे थे। पुलिन जब अस्पताल से अपने घर गया, तब प्रमोदराय बाहरी बैठक में पलंग पर लेटे-लेटे कुछ सोच रहे थे। कभी कभी वह सामने दीवाल पर टंगी हुई घड़ी की ओर भी देख लिया करते थे। बाहरी द्वार से यदि कभी कभी कुत्ता भी भीतर की ओर दौड़ जाता तो वे झाँक लिया करते थे। दो-एक बार उन्होंने नौकर को बुला कर पूछा भी, कि पुलिन अब तक नहीं आया ! नौकर के बार बार के 'नहीं' के उत्तर और घड़ी की सुइयों की बढ़ती हुई गति से प्रमोदराय के मन का ताना-बाना बढ़ता ही जा रहा था और वे मन ही मन खीझ से रहे थे।

सहसा पदध्वनि से प्रमोदराय द्वार की ओर झांक पड़े। पुलिन द्वार से निकल कर बैठक के भीतरी द्वार के सामने आ चुका था। प्रमोदराय बोल उठे, कौन पुलिन !

'हाँ पिता जी मैं ही हूँ'—पुलिन ने उत्तर दिया।

यहाँ तो आ बेटा, कुछ बातें करनी हैं—प्रमोदराय ने कहा।

पुलिन आशंकित चित्त से सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया। प्रमोदराय ने पहले उससे उसके अस्पताल के सम्बन्ध में पूछा, फिर अस्पताल में आने वाले रोगियों के सम्बन्ध में बात की, और फिर अस्पताल की आर्थिक अवस्था पर आ गये। अस्पताल की आर्थिक अवस्था पर बात करते करते घरेलू मामिलों पर आगये, और सम्बन्धियों के सम्बन्ध में बात चीत करने लगे।

इसी बात चीत ही के क्रम में प्रमोदराय बोल उठे, बेटा एक बात याद आगई। कैलाशनाथ के यहां से बुलावा आया है। माया का जन्म दिवस है। मुझे तो अवकाश है नहीं! तुम्हीं चले जाना।

पुलिन चुप रहा। जैसे उसने कुछ सुना ही न हो। प्रमोदराय पुनः बोल उठे, अवश्य उस दिन कैलाशनाथ के यहाँ चले जाना। उनकी पत्नी ने तुझे विशेष रूप से बुलाया है।

पुलिन पुनः चुप रहा। उसे ऐसा लगा, मानों प्रमोदराय ने केवल इसी बात के लिये उसे अपने पास बुलाया हो। प्रमोदराय उत्तर के लिये मन ही मन प्रतीक्षा कर रहे थे किन्तु पुलिन शीघ्र से शीघ्र किसी/प्रकार उस कमरे से निकल जाना चाहता था। प्रमोदराय को मौन देख कर पुलिन ने सोचा, अब वे कुछ न कहेंगे, और वह उठने का उपक्रम करने लगा,

किन्तु प्रमोदराय उसके उठने के पूर्व ही बोल उठे, तुम्हें उसं दिन अवश्य कैलाशनाथ के यहाँ जाना चाहिये पुलिन! तुम्हें ज्ञात है न, कि उनकी लड़की माया देवी के साथ तुम्हारे विवाह की बात चीत चल रही है।

पुलिन के लिये यह नई बात न थी। किन्तु फिर भी पुलिन के हृदय को एक आघात लगा। पुलिन ने भीतर ही भीतर उस आघात का अनुभव किया। वह इस बार भी मौन ही रहना चाहता था, किन्तु अब प्रमोदराय के बार-बार पूछने पर वह विवश हो गया था, कि कुछ उत्तर दे। उसने अनिच्छित मन से सिर नत करके कहा, 'अवकाश होगा तो चला जाऊंगा पिता जी!'

नहीं पुलिन, तुम्हें अवकाश निकाल कर जाना पड़ेगा!— प्रमोदराय कुछ दृढ़ता प्रगट करते हुये बोले—तुम न जावोगे तो उनके कुटुम्बियों को कष्ट होगा। क्योंकि एक प्रकार से विवाह निश्चित् हो गया है। और उन्होंने तुम्हें आदर पूर्वक बुलाया है।

पुलिन विचार मग्न हो उठा। उसके भीतर एक तूफान सा उठ खड़ा हो गया। पुलिन को ऐसा लगा, मानों उसके मन का बाँध टूट जायगा, और भीतर उफनाता हुआ समुद्र अपनी सीमा, और मर्यादा दोनों का एक साथ ही परित्याग कर देगा। पुलिन ने अपने मन की इस अशक्तता को ताड़ लिया और वह सतर्क हो उठा। उसने भीतर चलते हुये झंझावात को दबाया, और मन को बाँध रखने का प्रयत्न करते हुये मन्द स्वर में

कहा, 'क्या विवाह सचमुच निश्चित् हो गया है पिता जी।'

'हाँ बेटा!'—प्रमोदराय ने पुलिन की ओर आश्चर्य चकित दृष्टि से देखते हुये कहा।

पुलिन कुछ क्षणों के लिये पुनः विचारों की तरंगों में बह चला, किन्तु उसे कुछ कहना था, कुछ कहने के लिये ही तो उसके मन में एक झंझावात उठ खड़ा हुआ था, अतः वह अधिक देर तक विचार-तरंगों में न बह कर गंभीरता के स्वर में बोल उठा, विवाह निश्चित् करने के पूर्व यदि आपने मुझसे भी पूछ लिया होता पिता जी, तो बड़ा अच्छा होता!

प्रमोदराय ने आँखों में आश्चर्य भरा कर पुलिन की ओर देखा। पुलिन की आकृति पर स्पष्टतः औदास्य, गंभीरता, और खिन्नता के भाव परिलक्षित हो रहे थे। प्रमोदराय झट पूछ बैठे, 'तुम्हारे कहने का तात्पर्य पुलिन!'

पुलिन का सिर झुका हुआ था। ऐसा लगता था, मानों वह विचारों में उलझा हुआ हो, और उसका मन किसी अकल्पित व्यथा का अनुभव कर रहा हो। पुलिन ने इसी अवस्था में कुछ संकोच करते-करते कहा, 'यदि यह विवाह आपने निश्चित् कर लिया है पिता जी, तो आप को निराश होना पड़ेगा। मैं माया के साथ विवाह न करूंगा!'

प्रमोदराय के हृदय को जैसे विद्युत का एक आघात सा लग गया। प्रमोदराय के शरीर का रग-रग उस आघात से झनझना उठा। प्रमोदराय उछल पड़े। उन्होंने एक साथ

ही चौंक कर कहा, 'निराश होना पड़ेगा ? क्यों, किस लिये

'इसका उत्तर मैं देने में असमर्थ हूँ पिता जी !'—पुलिन उसी रूप में बोला।

'आखिर तुम क्यों माया के साथ विवाह न करोगे ?—प्रमोद राय ने अपनी दृष्टि गड़ाते हुये कहा—कैलाशनाथ के पास क्या नहीं है ? धन, मर्यादा, कुटुम्ब, सब कुछ तो है, और माया भी तो स्वरूपवती है। इस वर्ष वह बी० ए० की परीक्षा भी देगी।'

'मैं यह सब जानता हूँ पिता जी !—पुलिन ने नम्रता के स्वर में उत्तर-दिया—किन्तु मेरी समझ में विवाह के लिये यही बातें आवश्यंक नहीं हैं। विवाह के लिये इससे भी बढ़ कर विवाहार्थियों में पारस्परिक विचारों के साम्य की आवश्यकता होती है, और मेरी समझ में इसका मुझमें और माया में पूर्णतः अभाव है पिता जी !'

प्रमोदराय कुछ आवेश में आये। उनके हृदय में क्रोध का कुछ झंझावात भी उठ खड़ा हो गया। उन्होंने पुलिन की ओर गहरी और तीव्र दृष्टि से देखा। पुलिन सिर नत कर के सोच रहा था। प्रमोदराय कुछ देर तक मौन रहने के पश्चात् बोल उठे, 'हां वह तुम्हारी तरह अछूतों और भिखमंगों के पीछे-पीछे नहीं दौड़ा करती। मैं बहुत चुप रहा पुलिन ! किन्तु अब चुप रहना मेरी शक्ति के बाहर है। तुम्हे यह विवाह करना ही पड़ेगा !'

पुलिन ने प्रमोदराय की ओर देखा। प्रमोदराय की आँखों

से क्रोध छिटक रहा था, और साँसें कुछ तीव्र हो चली थीं। पुलिन चाहता नहीं था, कि आग से चिनगारियाँ फूटें, किन्तु जब प्रमोदराय उसे बिखेरने ही लगे, तब पुलिन बोल उठा; 'मैं इस विवाह से अविवाहित रहना अच्छा समझता हूँ पिता जी! माया समृद्धिशाली पिता की कन्या है, उसे ग़रीबों अछूतों से घृणा है, और मैं ठहरा उनके पीछे-पीछे दौड़ने वाला। फिर आप ही सोचें, मेरा और माया का साथ कैसे निभ सकता है? अभी तो आप विवाह के लिये आग्रह कर रहे हैं, किन्तु आपने क्या उस दिन की भी सोची है, जब विचारों में अन्तर होने के कारण हम दोनों लड़ कर अपने जीवन को धूल में मिलाने के साथ ही गृहस्थी के सुख को भी खाक़ में मिला देंगे!'

पुलिन कहते-कहते आवेश में आ गया। उसके शब्दों में उसका हृदय ही लिपट कर निकला पड़ रहा था। प्रमोदराय सन्नाटे में आ गये। विवाह के पश्चात् के जिस चित्र को पुलिन ने खींचा था, उसे देखते ही प्रमोदराय स्तब्ध हो उठे। कुछ देर के लिये वे यह भूल गये, कि उन्हें क्या कहना है, और क्या नहीं? वे केवल पुलिन की आकृति की ओर देखते रहे। पुलिन की आकृति पर दृढ़ निश्चय के भाव थे। प्रमोदराय कुछ देर तक स्तब्ध होकर उसी को पढ़ते रहे। पुनः बोल उठे, 'किन्तु मैं वचन दे चुका हूँ पुलिन! मैं कहता हूँ फिर सोचो! अभी से विवाह के पश्चात् की बातों पर विचार करना अज्ञानता है। माया अच्छी लड़की है, और उसके साथ तुम्हारा जीवन सुख के ही साथ बीतेगा!'

पुलिन ने प्रमोदराय की ओर देखा। प्रमोदराय दृढ़ता के साथ अपने पथ पर चलते ही जा रहे थे। उनकी प्रगति को देख कर पुलिन भी आश्चर्य-चकित हो उठा। उसने कभी इसकी कल्पना भी न की थी, कि प्रमोदराय इस विवाह के लिये इतने दृढ़ होंगे। पुलिन सोचने लगा। उसके हृदय में तरह-तरह के विचार बनने और बिगड़ने लगे। किन्तु प्रत्येक विचार में उसके हृदय से यही ध्वनि निकलती थी, कि वह माया के साथ विवाह न करेगा। पुलिन अपने हृदय से विवश हो उठा, और कह पड़ा, 'मैं आपकी इस आज्ञा का पालन न कर सकूँगा पिता जी !'

प्रमोदराय के हृदय की आग जैसे भभक-सी उठी। हृदय के कोने-कोने में क्रोध का बवण्डर दौड़ पड़ा, और वे बोल पड़े, 'न करोगे, तो जाओ, अपना रास्ता देखो ! आज से मुझसे और तुम से कोई तात्पर्य नहीं !'

पुलिन कुर्सी से उठ कर कमरे के बाहर निकल गया। प्रमोद राय सूखे वृक्ष की तरह पलँग पर गिर पड़े। पुलिन का जाना उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ, मानों किसी ने उन पर वज्र प्रहार किया हो।
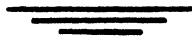
[९]

दोपहर ढल रहा था। पुलिन अपने अस्पताल के एक कक्ष में पलँग पर आँख बन्द कर लेटा-लेटा कुछ सोच रहा था। रह-रह कर उसके सामने माया आ रही थी, और गूँज रहे थे उसके कानों में प्रमोदराय के शब्द, 'माया अच्छी लड़की है, और उसके साथ तुम्हारा जीवन सुख के साथ बीतेगा!' फिर वह माया के साथ क्यों नहीं अपने जीवन की ग्रन्थि बाँध लेता? सचमुच माया में सौन्दर्य है, शिक्षा की ज्योति है, और है उसका पिता समृद्धशाली! उसके साथ अपने जीवन को बाँधकर सचमुच वह सुख का जीवन बिता सकता है, किन्तु वह जो विदेशी संस्कृति में ही अपने जीवन का गौरव देखती है। यदि यही बात होती तो पुलिन उसे मान भी लेता, किन्तु वह तो भारतीय संस्कृति को साथ-साथ तुच्छ भी समझती है। वह भारतीय स्त्रियों को हेय बताकर नारी जीवन में स्वातंत्र्य चाहती है, और उसका अर्थ लगाती है, उच्छृङ्खलता। फिर उसके साथ वह किस

प्रकार जीवन के पथ पर चल सकेगा ? गिर नहीं पड़ेगा ? अवश्य, अवश्य !

पुलिन का मन विचारों के पथ पर दौड़ रहा था। प्रमोद राय की स्थिति का स्मरण कर उसका मन माया की ओर खिंचता अवश्य था, किन्तु जब माया अपने वेश, व्यवहार, बात चीत और विचारों के साथ पुलिन की आँखों के सामने आकर खड़ी हो जाती, तब पुलिन की आँखें उसकी ओर से हट जातीं और उसके हृदय में एक विरक्ति भी जाग जाती। साथ ही उस का मन कह पड़ता, नहीं, वह माया के साथ विवाह न करेगा। फेर नीरा उसकी आँखों के सामने आजाती और वह उसके संबंध में सोचने लगता—वह क्यों न नीरा के सामने विवाह का प्रस्ताव रक्खे ! वह कितनी रूपवती है और अब उसने पढ़ लिख भी लिया है। पर जमुना और प्रमोदराय ! दोनों में से कोई भी तो उसे इस विवाह की स्वीकृति न देगा।' पुलिन नीरा के सम्बन्ध में सोचते-सोचते यहीं आकर रुक जाता। और उसके मन में एक बेकली-सी उठ खड़ी हो जाती वह भीतर ही भीतर तड़प उठता। उसका मन बहुत खोजने पर भी अपने लिये पथ न पा रहा था। उधर वह माया से विवाह नहीं करना चाहता, और इधर नीरा से उसे कोई विवाह ही न करने देगा। विचित्र मन की गति थी पुलिन की !

पुलिन आश्चर्य नहीं, विचारों के पथ पर चलते-चलते थक जाता, और उसकी आँखों में नींद टपक पड़ती, किन्तु इसी समय नीरा आ गई। नीरा अब समाचार पत्र और पुस्तकें पढ़ने लगी थी।

शिक्षा की ज्योति से अब उसका सौन्दर्य और भी अधिक चमक उठा था। अब उसकी रहन-सहन और उसकी बात चीत भी अधिक सुसंस्कृत हो गई थी। यद्यपि नीरा ने अपने पढ़ने-लिखने का हाल जमुना से पूर्णतः गुप्त ही रक्खा था, किन्तु इधर नीरा में जो परिवर्तन हो चला था, उससे जमुना कुछ सशंकित हो उठी थी, और अब वंशी भी नीरा के रंग-ढंग को देख कर जमुना से यह कहने ही वाला था, कि वह नीरा का शहर जाना बन्द कर दे, किन्तु नीरा अब भी अपने पथ पर चली जा रही थी।

नीरा ने जब पुलिन के कमरे में पहुँच कर उससे नमस्ते किया, तब सहसा पुलिन की विचार धारा रुक गई, और साथ ही वह बोल पड़ा, 'आवो, बैठो नीरा !'

नीरा सामने ही पड़ी हुई कुर्सी खींच कर बैठ गई। पुलिन ने उसकी ओर देखा। उसके अंग-अंग से सौन्दर्य और यौवन फूट रहा था। पुलिन उसी में बह चला, और उसके मन में एक झंझावात सा बह चला। पुलिन ने शक्ति भर उस झंझावात को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वह चला, तो बराबर चलता ही रहा, और फिर वह बन्द कैसे हो सकता था, जब उसे प्रोत्साहित करने वाली नीरा पुलिन के सामने बैठी हुई थी।

उसी झंझावात के झोंके में पुलिन बोल उठा, 'अब तो तुमने काफ़ी पढ़ लिया है नीरा ?'

'आपकी कृपा से पुलिन बाबू !—नीरा ने उत्तर दिया—आज क्या पढ़ाइयेगा ?'

पुलिन चुप रहा। नीरा ने पुलिन की ओर देखा। पुलिन आँखों में रस भर कर नीरा की ओर देख रहा था। नीरा अनेक बार पुलिन की ओर देख चुकी थी, किन्तु आज पुलिन का दृष्टि-पात उसे कुछ और ही ढंग का दिखाई पड़ा। नीरा सिर नत करके सोचने लगी। पुलिन बोल उठा, 'नीरा!'

पुलिन का कंठ जैसे अवरुद्ध सा हो उठा था, जैसे किसी ने उसकी वाणी को जकड़ लिया हो, और वह धीरे-धीरे फूट रही हो। वाणी में स्निग्धता भी अधिक आ गई थी। नीरा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से पुलिन की ओर देखा। मानों वह पुलिन से पूछ रही हो, क्या है पुलिन बाबू?

पुलिन आतुर होकर बोल उठा, 'एक बात पूछूं नीरा, उत्तर दोगी?'

पूछिये पुलिन बाबू!—नीरा ने मन्द स्वर में कहा।

पुलिन सोचने लगा। जब पुलिन ने कुछ देर तक कुछ न पूछा, तब नीरा ने पुनः पुलिन की ओर देखा। नीरा को पुलिन की आकृति पर अनेक प्रकार के भाव परिलक्षित हुये। नीरा बार बार पुलिन की ओर देख कर उन भावों को पढ़ने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु पुलिन उसे अधिक अवसर न देकर बीच ही में बोल उठा, 'तुम जानती हो न नीरा, कि मैं तुम्हें कितना प्रेम करता हूँ! क्या तुम उस प्रेम का मूल्य चुका सकती हो नीरा?'

नीरा जैसे चकित-सी हो उठी। वह अभी तक पुलिन को

देवता समझती रही। उसे कभी स्वप्न में भी यह ध्यान न था, कि पुलिन भी इस संसार का ही एक व्यक्ति है। नीरा का हृदय उसी प्रकार हिल उठा, जैसे अंधड़ के चलने से वृक्ष की एक छोटी टहनी हिल उठती है। उसने आँखों में आश्चर्य भर कर पुलिन की ओर देखा, और देख कर बोल उठी, 'आप का तात्पर्य मैंने नहीं समझा पुलिन बाबू ?'

'तुम कितनी सीधी हो नीरा !—पुलिन कहने लगा—यह सच है, कि मैंने अब तक जो कुछ तुम्हारे साथ किया है, उसमें मेरी मानवता का स्थान है, किन्तु नीरा, मानवता के अतिरिक्त उसमें एक और वस्तु का स्थान है, और वह है मेरे हृदय के प्रेम का। आश्चर्य है नीरा, तुमने अब तक उसे नहीं समझा। सच बात तो यह है नीरा, कि तुम्हारा यह न समझना ही मुझे तुम्हारी ओर खींचता जा रहा है। पहले पहल जब मैंने तुम्हें देखा था, तब भले ही मेरे मन में इस बात की कल्पना न उठी हो, किन्तु आज तो मैं प्रति क्षण यही सोचता हूँ नीरा, कि जब तुम मेरे अन्तर में प्रवेश कर गई हो, तब मेरे जीवन में भी बँध जावो। सच कहता हूँ नीरा, मैं तुम्हारे लिये अपने जीवन के संपूर्ण सुखों को भी छोड़ने के लिये तैयार हूँ।'

नीरा का अंतर-अंतर कम्पित हो उठा। उसके अग-अग को एक ऐसा कर्कश आघात लगा, कि उसके भीतर से पसीने की बूँदें पसीज आईं। यदि पुलिन के स्थान पर कोई दूसरा होता तो वह उसे झिड़क कर चल देती, किन्तु पुलिन को वह

भी प्रेम करती थी। उसकी दृष्टि में पुलिन इस संसार का देवता था। वह सिर नत कर सोचने लगी, 'क्या उत्तर दे पुलिन को ?' पुलिन उत्तर न पाकर पुनः आतुरता पूर्वक बोल उठा, 'बोलो नीरा, मेरी बात का उत्तर दो। कहो, कि हाँ पुलिन बाबू !'

नीरा फिर मौन रही। वास्तव में बात तो यह थी, कि उसे कोई उत्तर ही नहीं मिल रहा था। वह नहीं चाहती थी, कि वह कोई ऐसा उत्तर दे, जिससे पुलिन के मन को कष्ट हो। उसका मन पुलिन को पीड़ित होने से बचाने के लिये भीतर ही भीतर फड़-फड़ा रहा था। किन्तु उत्तर पाने में ज्यों ज्यों विलम्ब हो रहा था, त्यों त्यों पुलिन के मन का बाँध खिसकतां जा रहा था। आखिर पुलिन ने नीरा का हाथ पकड़ने के उद्देश्य से अपना हाथ आगे बढ़ाया। अब नीरा चुप न रह सकी। और वह पलिन कीं ओर देखती हुई बोल उठी, 'क्षमा कजिये पुलिन बाबू, मेरी सगाई हो चुकी है।'

पुलिन का हृदय सिहर उठा। उसके अंग-प्रत्यंग में एक दुख-सा दौड़ गया। पुलिन को ऐसा लगा, मानों जिस कल्पना के दुर्ग को उसने बड़ी तपश्चर्या और साधना के साथ तैयार किया था, वह अब एक ही झोंके में गिरना चाहता है। पर पुलिन उसे न गिरने देगा। उसने उसे बचाने की चेष्टा करते हुये कहा, 'सगाई हो चुकी है तो क्या हुआ नीरा, विवाह तो नहीं हुआ है। हम तुम दोनों विवाह करके बड़े सुख का जीवन बितायेंगे !'

यह कैसे हो सकता है पुलिन बाबू !—नीरा के कंठ खुल पड़े—आप महलों में रहने वाले अमीर और मैं झोंपड़ी में रहने वाली भिखारिणी। यह सच है, कि आप सहृदय हैं, उदार हैं, किन्तु मेरे लिये यही अच्छा है पुलिन बाबू, कि मैं अपने ही समाज में रहूँ, और, फिर मेरी सगाई हो चुकी है। आप भले ही सगाई को विवाह न माने, किन्तु हम ग़रीब तो आपस में किये हुये करार को निभाना ही अपना धर्म समझते हैं।'

नीरा की आकृति पर दृढ़ता के भाव थे। उस दृढ़ता के नीचे पुलिन के समस्त उपकार और उसकी सारी उदारता दबी हुई कराह रही थी। पुलिन के हृदय को कर्कश आघात तो लगा, किन्तु वह आश्चर्य चकित हो उठा। साथ ही उसके मन ने भीतर ही भीतर उसे उपेक्षित और अपमानित भी किया। पुलिन अब अपने को नीरा के सम्मुख एक लज्जा जनक परिस्थिति में पाने लगा। अब वह कुछ ऐसी बात कहने के लिये क्षेत्र बनाने लगा, जिस से नीरा के मन में उस के प्रति पैदा हुई कालिमा धुल जाय, और वह पुनः धवल हो जाय, किन्तु बीच ही में उसे किसी की पद-ध्वनि से अपने प्रयत्न को रोक देना पड़ा। पुलिन सावधान होकर बैठ गया, और उसने एक ही क्षण में देखा, 'अजित हाथ में अख़बार लिये हुये चला आ रहा है।'

द्वार से ही वह बोल उठा, 'क्षमा कीजियेगा पुलिन बाबू! बाहर से कई बार आवाज़ लगाई, किन्तु जब कोई न बोला, तो

भीतर चला आया। सोचा, अस्पताल में आप के अतिरिक्त और होगा ही कौन?'

अजित अब तक पुलिन के पास आ चुका था। वह सामने पड़ी हुई एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। उसने बैठते-बैठते एक दृष्टि पुलिन और दूसरी दृष्टि नीरा की आकृति पर डाली। पुलिन की आकृति पर वह अनेक बार दृष्टि डाल चुका था। कम से कम दिन में एक बार अवश्य उसकी आखें पुलिन को देखती थीं। पुलिन के साथ वह कई वर्षों तक कालेज और युनिवर्सिटी की कक्षाओं में पढ़ता रहा था। किन्तु आज के से भाव उसने पुलिन की आकृति पर कभी नहीं देखे थे। अजित पुलिन की ओर देख कर आश्चर्य चकित हो उठा। पुलिन को अजित का आना अप्रिय तो लगा, किन्तु अब वह अपने को उस परिस्थिति से निकालने का प्रयत्न करने लगा, जो उसके प्रति अजित के मन में उत्पन्न हो गई थी, और आते ही जिस पर अजित ने प्रकाश डाला था। पुलिन अपने मन की अप्रियता को दबा कर बोल उठा, 'क्या हुआ, जो चले आये। घर तुम्हारा है। कहो, कहाँ से आ रहे हो?'

अजित ने पुलिन की बात सुनी अवश्य, किन्तु जैसे उसका ध्यान किसीं दूसरी ओर हो। उसने पुलिन की बात का उत्तर न देकर पुनः एक दृष्टि नीरा पर फेंकी। पुलिन और नीरा दोनों ने ही उसकी दृष्टि को देख लिया। नीरा को अजित की दृष्टि बहुत कड़ुवी लगी। पुलिन को आशंका हो रही थी, कि कहीं

अजित की आँखें पर्दे को काटती हुई वास्तविकता तक न पहुँच जायँ। अतः वह अजित को जानने का अधिक अवसर न देकर शीघ्रता के साथ बोल उठा, 'जान पड़ता है तुम किसी गहरी उलझन में उलझ गये हो अजित ?'

अजित चौंक पड़ा, और साथ ही साथ कह उठा, 'नहीं तो पुलिन बाबू ! हाँ आपने यही तो पूछा है न, कि मैं कहाँ से आ रहा हूँ ? मेरे लिये स्थान ही दूसरा क्या हो सकता है ? मज़-दूरों की एक सभा में गया था, और वहीं से भाषण देकर चला आ रहा हूँ।'

अजित ने अपने आन्तरिक भावों को छिपा कर बात तो कही, किन्तु नीरा और पुलिन, दोनों को ही यह जानने में विलम्ब न लगा, कि अजित मन ही मन उन दोनों ही के ऊपर विचार कर रहा था, और उसके मन में एक सन्देह जाग पड़ा है, जिसमें वह उलझ गया है। पुलिन पुनः बोलना ही चाहता था, कि उसके पूर्व ही नीरा बोल उठी, 'अब मैं जाती हूँ पुलिन बाबू !'

पुलिन ने नीरा की ओर देखा। उसकी आँखें नीचे झुकी हुई थीं। अजित ने पुनः कनखियों से नीरा और पुलिन की ओर देखा और फिर उस द्वन्द का चित्र उसकी आँखों के सामने साफ़-साफ़ खिंच गया, जो उन दोनों के भीतर मच रहा था। उसने मन ही मन शीघ्र एक कल्पना चित्र भी तैयार कर लिया। पुलिन पहिले ही से अजित के मन के भीतर घुसकर उसके सन्देह

को भयभीत होकर देख रहा था। अब जब वह नीरा और पुलिन को लेकर कल्पना की एक लम्बी सीढ़ी तैयार करने लगा, तो पुलिन झट बल उठा, अच्छा जाइये। किसी दूसरे समय आइये तब मैं पुनः आपके रोग पर विचार करूँगा।'

नीरा ने पुलिन को नमस्ते किया, और फिर वह चली गई। नीरा का जाना पुलिन को अखरा तो किन्तु अब जो उसका मन अजित के सन्देह-बन्धनों से अपने को छुटाने के लिये दौड़ रहा था, अतः नीरा के चले जाने का कष्ट उसे पकड़ ही न सका। पुलिन सोच रहा था, कि बातों की पालिश से उसने अजित के मन में पैदा हुये सन्देह को बहुत कुछ साफ कर दिया है, और अब वह भीतर ही भीतर कुछ निश्चिन्त सा हो रहा था, किन्तु नीरा के जाने पर जब अजित पूछ बैठा, कि 'यह लड़की कौन थी पुलिन', तो पुलिन फिर भँवर में फँस गया। वह कुछ अचकचाया तो, किन्तु पुनः सतर्क होकर बोल उठा, एक पंजाबी सज्जन हैं। उन्हीं की लड़की है। दवा के लिये आई थी।

पुलिन के स्वर में अशक्तता थी। उसने अपनी बात को जिस ढंग से समाप्त किया, उससे अजित को यह जानने में विलम्ब न लगा, कि पुलिन पर्दे के नीचे कुछ ढँक रहा है। अजित कुछ देर तक मौन रहा, और पुनः बोल उठा, यह कौन कहता है पुलिन, कि दवा के लिये नहीं आई थी। भला कोई युवती लड़की एकान्त में किसी डाक्टर के पास दवा के लिये न

आयेगी तो आयेगी किस काम के लिये ? किन्तु पुलिन···।

पुलिन चकित-सा हो उठा। उसने एक बार आँखों में विस्मय भर कर अजित की ओर देखा, और फिर बोल उठा, 'किन्तु क्या अजित ?'

इस बार पुलिन के स्वर में तीव्रता थी, और साथ ही उसमें कुछ बल भी आ गया था। किन्तु उस तीव्रता और बल का अजित के ऊपर रंचमात्र भी प्रभाव न पड़ा। वह बहुत ही जमे हुये स्वर में कहने लगा, किन्तु पुलिन आज तुम्हारी आकृति का तेज कटा हुआ है, आँखें शरमा रही हैं, और मन छिपने के लिये भागा जा रहा है। यह सब क्यों पुलिन ? क्या इसलिये, कि इस एकान्त में बैठ कर तुम इस लड़की का रोग निदान कर रहे थे।

पुलिन की आँखें गर्म हो उठीं। अन्तर भी क्रोध की आंधी से कम्पित हो उठा। किन्तु पुलिन ने अपने को सँभाला और वाणी को तीव्र बना कर कहा, तुम मेरे ही घर में मेरा अपमान कर रहे हो अजित !

उत्तेजित न हो पुलिन !–अजित शान्त स्वर में कहने लगा—तुम्हारा उत्तेजित होना ही तो पर्दे में छिपे हुये रहस्य को स्पष्ट करता जा रहा है। कल्पना कर लो, यदि तुम यहाँ इस एकान्त में बैठ कर इस लड़की से प्रेम की बातें कर रहे थे, तो इसमें हानि ही क्या है। माया के साथ विवाह करना तुमने अस्वीकार ही कर दिया है। फिर तुम्हें प्रेम करने के लिये कोई न कोई लड़की

तो चाहिये ही ! तो क्या इसी से विवाह भी करने का विचार है पुलिन ! बेचारी माया...।

'अजित बोल तो बड़ी ही मन्द गति से रहा था, किन्तु उसकी कथन-शैली में एक गहरा व्यंग था। इस व्यंग्य से पुलिन के अन्तर का कोना-कोना तक छिलता जा रहा था। जब अजित बढ़ता ही चला गया, तब पुलिन बीच ही में उसे डाट कर बोल उठा, बस करो अजित, चले जाओ यहां से !

पुलिन स्वयं कुर्सी से उठ कर एक कक्ष की ओर चला गया उसके हृदय के कोने-कोने से अपमान, लज्जा और दुःख की भयानक आँधी उठ रही थी। अजित उस आँधी को और भी अधिक उत्तेजित करने के उद्देश्य से आनन्द के साथ गाने लगा—

'तुम छिप रहे हो मुझसे, मुझसे छिपा है क्या ?
कहो तो बता दूँ तुमको, भीतर छिपा है क्या ?'

---

[१०]

दिल्ली नगर में कैलाशनाथ की बड़ी प्रतिष्ठा थी। वैभव और सम्मान दोनों ही एक साथ जुट कर उनके चरणों पर खेल रहे थे। किसी को चाहने पर भी सम्मान नहीं प्राप्त होता, किन्तु कैलाशनाथ जहाँ पहुँच जाते, वहीं उनके लिये लोग आँखें बिछाये खड़े रहते। इसके दो कारण थे। एक तो उनके पास अपार धन था, और दूसरे दिल्ली के सुप्रसिद्ध वकीलों में उनका सम्मान-पूर्ण स्थान था। अब तो उन्होंने कोर्ट जाना छोड़ दिया था, किन्तु जब वे प्रेक्टिस कर रहे थे, तो दिल्ली के कानूनी संसार में उनकी बड़ी धाक थी। बड़े बड़े अपराधों के चंगुलों में फँसने के पश्चात् लोग उन्हीं का द्वार खटखटाते थे। अब भी जब किसी को कहीं से कानूनी अवलंब न मिलता, तब वह कैलाश नाथ ही के पास आता, और अनुनय-विनय करके उन्हें कोर्ट में ले ही जाता था।

कैलाशनाथ पाश्चात्य सभ्यता के पोषक थे। उनके घर का सारा रहन-सहन इसी आधार पर निर्मित हुआ था। छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु तक पश्चात्य सभ्यता के ही रँग में रँगी हुई थी। उनका उठना बैठना, मिलना जुलना, और बात चीत करना भी अधिकतर ऐसे ही लोगों के साथ होता था, जो अपने को भारतीयता से दूर रखने में एक गर्व और गौरव का अनुभव करते थे। जब से उन्होंने कोर्ट जाना छोड़ दिया, कपड़े की एक अपनी मिल खड़ी कर ली थी। अब उनका अधिकांश समय मिल के ही प्रबन्ध में बीतता था।

कैलाशनाथ के कोई पुत्र न था, किन्तु कभी उनके मन में पुत्र न होने का कष्ट न हुआ। क्योंकि वे योरोपीय सभ्यता के व्यक्ति थे, और लड़के और लड़की में कोई अन्तर नहीं समझते थे। पाठक माया को न भूले होंगे! यह माया इन्हीं कैलाशनाथ की पुत्री थी। कैलाशनाथ ने उसे बड़े सुख और प्यार के साथ पाला था। योरोपीय सभ्यता की अच्छी से अच्छी और बहुमूल्य वस्तुयें माया के सुख और आनन्द के लिये उस के सामने सदैव बिखरी पड़ी रहती थीं! कैलाशनाथ ने प्रारंभ से ही इस बात का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था कि माया पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार एक आदर्श पथ पर चले। अब जब माया सयानी हो गई थी, और यूनिवर्सिटी में पढ़ रही थी, तब कैलाशनाथ का प्रयत्न फल फूल भी रहा था। माया उन

की आशा से कहीं अधिक पाश्चात्य सभ्यता के पथ पर दौड़ लगा रही थी। युनिवर्सिटी भर में वह इस रूप में अधिक प्रसिद्ध थी। उसने कई विवाद प्रतियोगिताओं में भी योरोपीय सभ्यता का पक्ष लेकर भाग लिया था।

गौर वर्ण, सुन्दर आकृति, और आकृति पर सौन्दर्य की अच्छी जगमगाहट थी। माया अपने इस वैभव को लेकर जहाँ पहुँच जाती, एक उन्माद सा बिखर पड़ता था। युनिवर्सिटी के लड़के तो इस उन्माद की धारा में इस प्रकार बहते, कि अपने को भी भूल जाते। बहुत से हृदय पर हाथ रखकर केवल आह मार कर रह जाते, और बहुत हृदय के भीतर कुलबुलाते हुये अरमानों को बाहर भी बिखेरने लगते! किन्तु माया किसी की ओर ध्यान न देती। वह उन्माद बिखेरती हुई निकलती, और एक आँधी की भाँति अनेकों के दिलों को तोड़ कर निकल जाती। वह बड़ी स्वाभिमानिनी थी। अपने रूप, यौवन और वैभव के सामने उसे सारा संसार ही तुच्छ सा लगता था। किन्तु वही माया जब पुलिन के सम्मुख पहुँचती, तो उसका सारा अभिमान बर्फ की भाँति गल जाता था। पुलिन को देखते ही वह ऐसी पिघल उठती थी, कि उसके पास अपना कुछ शेष ही न रह जाता था। वह पुलिन को प्राण पण से चाहती थी, और उसके जीवन में जीवन मिला कर सम्मिलित जीवन के सुख की कल्पना करती थी। किन्तु पुलिन उतना ही माया से दूर रहना चाहता था, जितना माया उसके सानिध्य के लिये व्याकुल हो

रहा था। माया जब अपनी रहन सहन के कारण अपनी श्रेणी के व्यक्तियों से मिलती, हँस हँस कर बातें करती, उनके साथ स्वतंत्रता पूर्वक घूमती, तब पुलिन की दृष्टि में वह बहुत तुच्छ-सी लगने लगती और उस समय तो, तब वह अपने वैभव के दर्प में गरीबों अछूतों के प्रति घृणा प्रदर्शित करती और कभी कभी जब वह भारतीय संस्कृति की ओर उँगुली उठाती, पुलिन उससे दूर और अधिक दूर ही रहने का प्रयत्न करने लगता। किन्तु अजित ऐसा न था। माया की इच्छा न होने पर भी वह उसे हृदय से चाहता था। पुलिन के प्रति उसके हृदय में ईर्षा का भाव भी था, और इसका कारण थी केवल माया। माया जब कभी पुलिन की ओर आकर्षित होती हुई अजित को दिखाई देती, और जब कभी वह देखता, कि माया उससे मिलने तथा बात चीत करने के लिये अवसर ढूँढ़ रही है, तब उस के हृदय में ईर्षा की एक आग धधक उठती थी, और वह माया के हृदय में पुलिन के प्रति विरक्ति उत्पन्न करने के लिये प्रयत्न के मार्ग पर दौड़ पड़ता था। किन्तु माया किसी ओर ध्यान न देकर पुलिन के प्रेम-पथ पर आगे बढ़ी ही जा रही थी।

संध्या के चार बज रहे थे। उस दिन कैलाशनाथ के बँगले में बड़ी चहल-पहल थी। इस चहल-पहल का कारण थी माया। उस दिन माया का जन्म दिन था। कैलाशनाथ प्रति वर्ष बड़े समारोह के साथ माया के जन्म दिन का उत्सव मनाया करते थे। नगर के अफसरों, धनिकों, और ऊँची श्रेणी के व्यक्तियों

को पार्टी देते थे, और कभी-कभी कुछ संस्थाओं को दान भी दे दिया करते थे।

उस दिन भी बाबू कैलाश नाथ के यहाँ पार्टी थी। माया ने इस पार्टी में अपनी युनिवर्सिटी के कुछ लड़कों और लड़कियों को भी निमंत्रित किया था। ज्यों ज्यों समय बीतने लगा, चहल-पहल बढ़ने लगी। कुछ ही देर के पश्चात् अतिथियों के आगमन के साथ-साथ विजली की तरह-तरह की बत्तियाँ जगमगा उठीं और कैलाशनाथ का बँगला आलोक का एक लोक-सा दिखाई देने लगा। सड़क पर खड़े होकर न जाने कितने ग़रीब उस आलोक को विस्मय से देख रहे थे, और कैलाशनाथ के भाग्य की सराहना कर रहे थे।

माया कैलाशनाथ के साथ-साथ इधर से उधर घूम रही थी, और परिचितों से हाथ मिला-मिला कर उनका स्वागत कर रही थी। फैन्सी साड़ी से आवेष्ठित उसका गौर शरीर सौन्दर्य पूर्ण आकृति पर खेलती हुई ज्योति, हँसते हुये अधर, और हँसती ही हुई आँखें! जो देखता, कुछ देर तक देखता ही रह जाता था। माया जिससे आगे बढ़ कर हाथ मिला लेती, वह अपने को धन्य समझने लगता था, और साथ ही उसकी रगों में विद्युत की एक धारा-सी बह उठती थी!

किन्तु न जाने क्यों माया का ध्यान बार-बार मुख्य द्वार की ओर जा पड़ता था। ऐसा लगता था, मानों वह किसी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही हो। सहसा प्रमोदराय मोटर

से उतरे और कैलाशनाथ ने माया के साथ ही आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया, और साथ ही विस्मय के स्वर में बोल पड़े, 'क्यों पुलिन बाबू कहा हैं ?'

प्रमोदराय उत्तर देने के लिये तैयार न थे। उन्हें ज्ञात न था, कि पहुँचते ही कोई उनसे पुलिन के सम्बन्ध में ही प्रश्न करेगा। किन्तु अब जब प्रश्न हो गया, तो उसे उत्तर तो देना ही चाहिये। शीघ्रता से बोल उठे, 'उसकी तबियत आज ठीक नहीं है कैलाश बाबू !'

तबियत ठीक नहीं है ?—कैलाशनाथ ने आश्चर्य चकित होकर पूछा क्या हुआ है ? आपने मुझे सूचित भी न किया। यहाँ घर में सब लोग उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं !

प्रमोद राय के मन में पुलिन के प्रति एक क्रोध का भाव जाग उठा। किन्तु उन्होंने भीतर ही अपने इस भाव को दबाया, और शीघ्रता के साथ बोल पड़े, कोई चिन्ता की बात नहीं है कैलाश बाबू ! यों ही साधारण हरारत है। कोई बात नहीं, किसी दूसरे दिन चला आयेगा !

प्रमोद राय ने उत्तर देते हुये वास्तविकता पर पर्दा डालने का अधिक प्रयत्न तो किया, किन्तु माया उसे जान ही गई। जान इसलिये गई, कि वह जानने के लिये चिन्तित थी। कैलाशनाथ इसे सच समझ कर अपने काम में लग गये। किन्तु माया उदास हो उठी। उसे ऐसा लगा, कि जैसे किसी ने उसके प्राणों पर तुषार डाल दिया हो। उसके हँसते हुये ओठ

सूख गये, आँखों में बहती हुई रस की धारा बन्द हो गई, और आकाश पर दौड़ने वाली ज्योति के जैसे पंख झड़ गये। माया अब सूनी सूनी-सी दीखने लगी। किन्तु यह सूना-पन माया की सुन्दरता के सम्मुख इतना सूक्ष्म था, कि किसी की आँखें शीघ्र उसे परख नहीं सकती थीं। किन्तु एक कोने में कुछ मित्रों के साथ बैठा हुआ अजित उसे बड़े ध्यान से देख रहा था। अन्यान्य लोग तरह-तरह की बातें करने में लगे थे, किन्तु अजित की आँखें माया के ही साथ-साथ घूम रही थीं, और वह उस की हँसी, चिन्ता, और उदासी को अच्छी तरह देख रहा था। देख ही नहीं रहा था, उसके कारण को भी अच्छी तरह समझ रहा था।

माया को अब वह पार्टी, वह समारोह, और वह जगमगाहट बिलकुल सूनी-सी ज्ञात हो रही थी। अब उसका मन उसे इस बात के लिये आकुल बना रहा था, कि वह शीघ्र से शीघ्र इस स्थान को छोड़ कर एकान्त में भाग जाय। किन्तु उसके साथ जो कैलाशनाथ लगे थे। फिर भी माया अवसर ढूँढ़ने में संलग्न रही, और कुछ देर के पश्चात् जब अतिथि खाने-पीने में लग गये, और कैलाशनाथ घूम-घूम कर लोगों से बातें करने लगे, तब माया को अवसर प्राप्त ही हो गया, और वह पार्टी को छोड़ कर अपने बँगले के पिछले भाग के बगीचे में चली गई और एक वृक्ष के नीचे रखी हुई तिपाई पर जा बैठी।

माया कब गई, यह पार्टी के किसी व्यक्ति ने न देखा। किसी

को माया के लिये इतनी चिन्ता भी नहीं थी किंन्तु अजित पार्टी में एकत्र समस्त व्यक्तियों से विभिन्न था। उसे केवल माया की चिन्ता थी, और उस ने माया को जाते हुये देख भी लिया था।

माया शोक में डूबी हुई तिपाई पर बैठी-बैठी मन में उठे हुये उद्गारों के साथ लड़ रही थी। सहसा किसी का हाथ उसके कन्धे पर पड़ा, और वह चौंक कर खड़ी हो गई। उसने देखा, सामने अजित आँखों में रस भर कर खड़ा था। माया की आँखों में रोष उतर आया और वह बोल उठी, तुम्हारा यह व्यवहार अधिक निन्दनीय है अजित!

मेरे ही लिये, या और भी किसी के लिये ये शब्द हैं माया!—अजित आँखों में रस उँडेल कर माया की ओर देखता हुआ बोल उठा।

माया और भी अधिक क्रोध से उद्दीप्त हो उठी। उसने घृणा और क्रोध के स्वर में कहा – तुम्हारा तात्पर्य!

तात्पर्य क्या तुम्हें बताना पड़ेगा माया!—अजित कंठ में व्यग्रता भर कर कहने लगा—तुम्हीं बताओ, तुम पुलिन से क्यों इतना प्रेम और मुझसे क्यों इतनी घृणा करती हो, जब कि पुलिन तुमसे घृणा करता है, और मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।

मैं आवश्यकता नहीं समझती अजित बाबू!—माया कुछ उत्तेजित होकर बोल उठी—कि आपको आपके इस प्रश्न का उत्तर दूँ। यह मेरी इच्छा है, चाहे जिससे प्रेम करूँ, चाहे जिससे

घृणा करूँ ! प्रेम और घृणा दोनों हृदय की वस्तु हैं, और वे अपने-अपने लिये उपयुक्त पात्र खोज लेती हैं !

तो तुम्हारा यह तात्पर्य है माया !—अजित बोल उठा—मैं तुम्हारे हृदय की घृणा का और पुलिन प्रेम का पात्र है। क्यों ?

यह अब आप ही समझें—माया ने उपेक्षा पूर्वक कहा—कौन घृणा का और कौन प्रेम का पात्र हो सकता है !

अजित के हृदय में माया की बातें तीर की तरह लगीं। वह भीतर ही भीतर तिलमिला उठा और साथ ही गंभीर बन गया। कुछ देर तक मन ही मन सोचता रहा। फिर बोल उठा, मुझे संतोष है माया, कि तुम भी मेरी ही भांति किसी के घृणा का पात्र-हो ! घृणा के पथ पर भी तो हम दोनों एक साथ हैं।

हो सकता है !—माया ने उपेक्षा के साथ कहा।

'हो सकता है' नहीं, है माया !—अजित माया के ऊपर दृष्टि फेंकते हुये बोल उठा—तुम समझती हो पुलिन तुमसे प्रेम करता है। वह तो तुमसे दूर रहने के लिये उतना ही व्यग्र रहता है, जितनी व्यग्रता तुम्हारे हृदय में उसके सानिध्य के लिये है। तुम्हारी आशा पूर्ण न होगी माया ! पुलिन एक अन्य लड़की को चाहता है।

अंतिम पंक्ति माया ने बड़े विस्मय के साथ सुनी, और वह आँखों में विस्मय भर कर अजित की ओर निहार उठी। अजित ने समझा बाण काम कर गया, और पक्षी आहत होकर गिर पड़ा। वह और भी अधिक उत्साहित होकर कहने लगा, तुम्हें

आश्चर्य हो रहा है माया ! सचमुच आश्चर्य होनें की बात ही है। मैं भी उस दिन आश्चर्य में डूब गया था, जिस दिन मैंने अपनी आँखों से पुलिन को एकान्त में एक पंजाबी लड़की के साथ प्रेम का अभिनय करते हुये देखा था। भला कौन जानता था कि

अजित अपने वाक्य को समाप्त भी न करने पाया था, कि माया बोल उठी, बस कीजिये अजित बाबू, बहुत हो चुका। जाइये, कृपा करके यहाँ से चले जाइये। मैं अब आपकी एक बात भी नहीं सुनना चाहती !

माया एक सांस में ही कह गई। उसकी सांसें तीव्र हो चली थीं। अजित ने जो बाण छोड़ा था, उससे उसका हृदय छलनी-छलनी हुआ जा रहा था। माया को ऐसा लग रहा था, मानों उसका हृदय आँखों में उतर पड़ेगा। वह पहले से ही अधिक विपन्न थी। अब यहाँ अजित ने आकर उसके हृदय की वेदना को और भी अधिक बिखेर दिया। माया उठीं हुई वेदना की आँधी में अपने को भूल गई। अजित से माया की यह परिस्थिति छिपी न रही। जब उसने समझ लिया, कि अब माया अधिक आहत हो चुकी है, तब वह पुनः उसे सँभालने के उद्देश्य से बोल उठा, तुम्हें दुःख हो रहा है माया ! तुम चाहे मुझे जितना अपमानित कर लो, किन्तु मैं तुम्हारे कल्याण के लिये ही कह रहा हूँ। पुलिन की आशा अब छोड़ दो माया ! मैं पुनः तुमसे एक बार कहता हूँ, कि मेरी ओर देखो, और मेरी

बातों पर विचार करो। हम तुम दोनों विवाह सूत्र में ......।

माया ने बीच ही में क्रोध पूर्ण नेत्रों से अजित की ओर देखा। अजित की चलती हुई वाक् धारा बीच ही में रुक गई, और माया स्वर में रुक्षता भर कर बोल उठी, 'आप कितने निर्लज्ज हैं अजित बाबू! मैं कह चुकी, कि आप यहाँ से चले जाइये, किन्तु आप जैसे सुन ही नहीं रहे हैं! अब आपको ले जाने के लिये मुझे विवश होकर किसी को बुलाना पड़ेगा?'

अजित का प्रेम से कातर हृदय भी अब अपमान की ज्वाला से दग्ध हो उठा, और वह दाह-पीड़ा से तिलमिला कर कहने लगा, 'जाता हूँ माया, किन्तु तुम भी स्मरण रक्खो, कि तुमने मेरा अधिक से अधिक अपमान किया है, और इसका परिणाम अधिक दुखकर भी हो सकता है।'

माया का हृदय जल रहा था। एक नहीं, दो-दो दिशाओं से आग की लपटें उसके हृदय में उठ रही थीं। अतः वह भी दहकते हुये स्वर में बोल पड़ी, 'मैंने तो अधिक संयम से काम लिया है अजित बाबू! अन्यथा आपकी बातों का प्रतिकार त किसी और ही प्रकार से हो सकता है!'

अजित एक रोष पूर्ण दृष्टि माया पर फेंक कर तीव्र गति से चला गया और माया मस्तक पकड़ कर तिपाई पर बैठ गई। सचमुच उसका हृदय उसकी आँखों में उतर आया। अपने ही आप आँसू छलक पड़े। पर अफ़सोस, शीघ्र ही उसे अपने आँसू पोंछ देने पड़े। क्योंकि बँगले में चारों ओर उसकी पुकार हो रही थी।

[११]

गर्मी के दिन थे। रात के आठ बज रहे थे। चाँदनी हँस रही थी। चाँदनी की हँसी से वह रात जैसे 'चाँदी की रात' मालूम हो रही थी। माया अपने बँगले की वाटिका में लान पर बैठ कर मन ही मन कुछ सोच रही थी। आज कई दिनों से वह अधिक चिन्तित और उदास थी। उसका मुख-सौन्दर्य मुरझा उठा था। शरीर सूखा जारहा था, और शरीर पर खेलने वाला उन्मादकारी यौवन मलिन होकर उड़ता जा रहा था। माया को न अपने खाने की चिन्ता थी, और न सोने की। वह दिन रात सोचती ही रहती थी। कैलाशनाथ ने उसे अनेक बार समझाया, किन्तु माया की चिन्ता कम न हुई। माया की चिन्ता और उसके दुख से कैलाश नाथ भी सूखे जा रहे थे।

माया जब जहाँ रहती, पुलिन के संबंध में ही सोचा करती थी। पुलिन उसके अन्तर के कोने-कोने में बैठ चुका था। वह जानती थी, कि पुलिन उससे घृणा करता है, किन्तु वह अपने

हृदय से विवश थी। उसका हृदय पुलिन को छोड़ कर और किसी की ओर जाता ही न था। एकान्त में बैठते ही पुलिन का चित्र उसकी आँखों के सामने नाच उठता, और माया सोचने लगती, क्यों, पुलिन उससे घृणा करता है क्यों ?

उस दिन रात में, हँसती हुई चाँदनी में, लान पर बैठ कर माया पुलिन के ही सम्बन्ध में सोच रही थी। उसके हृदय से बार बार यही ध्वनि निकल रही थी, कि क्यों पुलिन उससे घृणा करता है, क्यों ? बार बार सोचने और विचार करने से माया को ऐसा लगा, मानों उसमें और पुलिन में बहुत दूर का अन्तर हो। उसने अपने और पुलिन के जीवन के चित्रों को ध्यान पूर्वक देखा, तो उसने अपने को पुलिन से बहुत दूर पर पाया। उसे यह भी वोध हुआ, कि वह पुलिन से प्रेम तो करती है, किन्तु उस प्रेम के लिये उत्सर्ग करना नहीं जानती। वह उत्सर्ग करना भले ही न जानती रही हो, किन्तु अब जब उसे उत्सर्ग का ज्ञान हो गया है, तब वह पुलिन के लिये उत्सर्ग कर सकती है। पुलिन का सानिध्य प्राप्त करने के लिये वह उत्सर्ग के पथ पर चलने के लिये तैयार हो उठी। उसके पास रूप, वैभव और यौवन था ही, अब वह उन वस्तुओं की सूची तैयार करने लगी, जिनसे पुलिन घृणा करता था, और जो उसके जीवन में घुस कर उसके जीवन की आधार शिला बनी हुई थीं। माया ने उन समस्त वस्तुओं का मन ही मन में एक क्रम लगाया। पाश्चात्य सभ्यता से प्रेम, भारतीयता से

हाँ पिता जी !–माया ने उठ कर उत्तर दिया।

कैलाशनाथ अब तक माया के समीप आ चुके थे। माया की ओर देखकर स्नेह-सिंचित स्वर में कहने लगे, तुम यहाँ अकेले ही हो माया ! तबियत ठीक है न !

हाँ पिता जी !–माया बोल उठी—गर्मी पड़ रही थी। इसलिये यहाँ चली आई। अब जाने ही वाली थी, कि आप आ गये।

आज कई दिनों के पश्चात् कैलाशनाथ ने माया के स्वर में उल्लास पाया था। इसके पूर्व माया जब बोलती, तब उसका स्वर दबा हुआ रहता। कैलाशनाथ ने आश्चर्य से एक बार माया की ओर देखा और फिर कहा, 'अच्छा किया बेटी, प्रति दिन सन्ध्या सवेरे वाटिका में आकर बैठा करो। आज कल तुम्हारा स्वास्थ्य अधिक गिरा जा रहा है।'

फिर बात बदल कर कैलाशनाथ कह उठे, 'बैठो-बैठो, खड़ी क्यों हो ? गर्मी के दिनों में हरी घास पर बैठना बड़ा सुखकर प्रतीत होता है।'

माया कुछ उत्तर दिये बिना ही चुपचाप घास पर बैठ गई। कैलाशनाथ भी कुछ दूर पर बैठ गये। चाँदनी की हँसी से सारा जग हँस रहा था। पेड़, पौदों पर भी एक ज्योति खेल रही थी। कैलाशनाथ ने उसी ज्योति की छाया में माया की आकृति को देखा। अब उसकी आकृति पर औदास्य और चिन्ता के स्थान पर सन्तोष का कुछ उन्माद झलक रहा था। कैलाशनाथ कुछ देर तक उसे देखते रहे, और फिर कुछ सोच

हाँ पिता जी !—माया ने उठ कर उत्तर दिया।

कैलाशनाथ अब तक माया के समीप आ चुके थे। माया की ओर देखकर स्नेह-सिंचित स्वर में कहने लगे, तुम यहाँ अकेले ही हो माया ! तबियत ठीक है न !

हाँ पिता जी !—माया बोल उठी—गर्मी पड़ रही थी। इसलिये यहाँ चली आई। अब जाने ही वाली थी, कि आप आ गये।

आज कई दिनों के पश्चात् कैलाशनाथ ने माया के स्वर में उल्लास पाया था। इसके पूर्व माया जब बोलती, तब उसका स्वर दबा हुआ रहता। कैलाशनाथ ने आश्चर्य से एक बार माया की ओर देखा और फिर कहा, 'अच्छा किया बेटी, प्रति दिन सन्ध्या सबेरे वाटिका में आकर बैठा करो। आज कल तुम्हारा स्वास्थ्य अधिक गिरा जा रहा है।'

फिर बात बदल कर कैलाशनाथ कह उठे, 'बैठो-बैठो, खड़ी क्यों हो ? गर्मी के दिनों में हरी घास पर बैठना बड़ा सुखकर प्रतीत होता है।'

माया कुछ उत्तर दिये बिना ही चुपचाप घास पर बैठ गई। कैलाशनाथ भी कुछ दूर पर बैठ गये। चाँदनी की हँसी से सारा जग हँस रहा था। पेड़, पौदों पर भी एक ज्योति खेल रही थी। कैलाशनाथ ने उसी ज्योति की छाया में माया की आकृति को देखा। अब उसकी आकृति पर औदास्य और चिन्ता के स्थान पर सन्तोष का कुछ उन्माद झलक रहा था। कैलाशनाथ कुछ देर तक उसे देखते रहे, और फिर कुछ सोच

कर धीरे से बोल उठे, 'एक बात पूछू माया, बताओगी ?'

माया चुप थी। कैलाशनाथ के आने के पूर्व उसका हृदय उल्लसित अवश्य हो उठा था, किन्तु जब कैलाशनाथ आये, और उसके पास ही लान पर बैठ भी गये, तब उसके हृदय में एक आँधी-सी चल पड़ी। उसका मन एक गम्भीर आशंका के दोल पर झूलने लगा। वह सोचने लगी, 'जाने क्या पिता जी पूछ बैठें ?' अतः जब कैलाशनाथ ने उससे कुछ रहस्यात्मक ढंग से पूछा, तब वह विस्मित होकर कैलाशनाथ की ओर निहार उठी, किन्तु फिर सिर नत कर विचार-मग्न हो उठी, और साथ ही बोल उठी, 'पूछिये पिता जी!'

कैलाशनाथ माया की मुख-मुद्रा को ध्यान से देख रहे थे। देखते ही देखते उन्होंने कहा, 'माया, आज कल तुम अधिक चिन्तित क्यों रहती हो ? तुम जानती हो, उस चिन्ता और औदास्य के कारण तुम्हारा शरीर किस प्रकार गिरता जा रहा है। सारा कुटुम्ब तुम्हारी इस अवस्था को देख कर प्रति क्षण दुखी रहता है। तुम्हें अपने माता-पिता से तो इसका कारण बताना चाहिये।'

कैलाशनाथ अपनी बात समाप्त कर उत्तर के लिये माया की ओर देखने लगे। किन्तु माया ने कुछ उत्तर न दिया। कैलाशनाथ को ऐसा लगा, मानों उनके प्रश्न से माया पर कुछ भार पड़ गया हो और वह उसी भार से दबी जा रही हो। यदि कोई दूसरा अवसर होता तो कैलाशनाथ माया

के दबे हुये मन पर और अधिक भार न डालते, किन्तु आज तो वे उससे कुछ जान कर के ही रहेंगे। अतः वे फिर बोल पड़े, 'बोलो बेटी, तुम देख रही हो न, कि मैं तुम्हारी चिन्ता को लेकर कितना आकुल रहता हूँ। क्या तुम्हें मुझ पर बिलकुल दया नहीं आती !'

कैलाशनाथ ने यह बात इस ढंग से कही, जिससे माया उत्तर देने के लिये विवश ही हो पड़ी। उसने पहले कैलाश नाथ की ओर देखा और फिर मन्द स्वर में बोल पड़ी, 'कोई विशेष बात तो नहीं है पिता जी !'

माया केवल इतना ही कह कर पुनः मौन हो गई। कैलाश नाथ उसकी मुख मुद्रा को बड़े ध्यान से देख रहे थे। वह भले ही कहे, कि कोई विशेष बात नहीं है, किन्तु उसकी बातों से ज्ञात होता था, कि अवश्य कोई विशेष बात है, और फिर कैलाश नाथ को न ज्ञात होना जो कि एक एक बात को जानते थे। कैलाश नाथ कुछ देर तक सोचते रहे। फिर बोल उठे, 'तुम मुझसे भी छिपाना चाहती हो बेटी ! अच्छा न बताओ, किन्तु मैं कहता हूँ, कि तुम्हारी यह चिन्ता और औदास्य व्यर्थ है। पुलिन तो अब अपने पिता का भी कहना नहीं मानता। उस दिन वह बीमार नहीं था। जान-बूझ कर मेरे यहाँ नहीं आया। जब उसे हम लोगों से इतनी घृणा है तब उसका और हमारा सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है ..?'

माया चुप रही। कैलाशनाथ रुक कर माया की ओर देखने

लगे। उन्हें आशा थी, कि कदाचित् माया कुछ कहेगी, किन्तु माया सिर नत करके सुनती ही रही। अब कैलाशनाथ ने सोचा, कदाचित् उनकी बातों से माया का हृदय प्रभावित हो रहा है!' अतः वे और भी कुछ प्रोत्साहित होकर बोल पड़े 'जब पुलिन अपने पिता का ही कहना नहीं मानता, तब मुझे भी अब उस की चिन्ता नहीं है। उसके ऐसे हजारों लड़के हैं, जिनके माता-पिता मेरे यहाँ सम्बन्ध करने के लिये आतुर हैं!'

अब माया मौन न रह सकी। कैलाशनाथ की बात अन्तिम बात ने उसके हृदय को हिला दिया। वह एक बार विस्मय से कैलाशनाथ की ओर निहार पड़ी, और फिर मन्द स्वर में कह उठी, 'आप गलत समझ रहे हैं पिता जी?'

क्या गलत समझ रहा हूँ बेटी!—कैलाशनाथ शीघ्र पूछ पड़े।

यही—माया ने उत्तर दिया—कि मेरी चिन्ता और उदासी का इस प्रकार का कोई कारण है, जिसकी आपने अपने मन में कल्पना कर ली है। यह बिलकुल ग़लत है पिता जी!

माया अपने हृदय में दृढ़ता लाकर कह तो गई, किन्तु सत्य को दबाने के कारण उसका हृदय आन्दोलित हो उठा। कैलाशनाथ ने पुनः उसकी मुख-मुद्रा की ओर देखा। उसकी मुख-मुद्रा पर स्पष्टतः गोपनीय रहस्य के भाव परिलक्षित हो रहे थे। कानूनी दाँव-पेचों की कतर ब्योंत करने वाले कैलाश नाथ उनसे कैसे अभिज्ञ रह सकते थे, और वे फिर बहुत कुछ

जानते भी तो थे, किन्तु उन्हें माया को एक निश्चय पर लाना था। अतः वे पुनः सतर्कता-पूर्वक बोल उठे, 'ठीक है बेटी, ठीक है, किन्तु माया !......।'

कैलाश नाथ कहते-कहते रुक गये, और कुछ गंभीर-से हो गये। माया ने समझा था, कि अब कैलाशनाथ उससे कुछ न पूछेंगे किन्तु इस बार कैलाशनाथ की प्रकृति पर जो गंभीरता खेल गई, उसे देख कर माया सहम-सी उठी, और उसे ऐसा लगा, कि शीघ्र ही उसे एक ऐसी गंभीर समस्या को सुलझाना पड़ेगा, जिसके सुलझाने में उसका मन पूर्ण रूप से असमर्थ है। माया ने आश्चर्य चकित होकर कैलाशनाथ की ओर देखा। कैलाशनाथ गम्भीर मुख-मुद्रा बनाये हुये कुछ सोच रहे थे! माया बोल उठी, 'कहिये पिता जी, रुक क्यों गये ?'

कैलाशनाथ ने माया की ओर देखा। माया ने अपना सिर नत कर लिया। कैलाशनाथ बोल पड़े, 'तुम जानती हो बेटी, कि मैंने तुम्हारा पाश्चात्य संस्कृति के अनुसार पालन किया है। कभी मैंने आज तक तुम्हारी किसी इच्छा का विरोध नहीं किया। आज जब मैं तुम्हारे जीवन-भविष्य का निर्माण करने जा रहा हूँ, मेरे लिये यह बहुत ही अनुचित होगा, कि मैं तुम्हारी सम्मति जान न लूँ ! तुम तो यह जानती ही हो बेटी, कि प्रमोदराय के यहाँ सम्बन्ध करना अब ठीक नहीं। अतः अब मैंने तुम्हारा विवाह अजित के साथ करने का निश्चय है। अजित किसी प्रकार पुलिन से कम नहीं !'

कैलाशनाथ अपनी बात समाप्त कर माया की ओर देखने लगे। माया को ऐसा लगा, मानों वह किसी ऐसी भायानक आपदा में आग्रस्त हो गई है, जिससे छूटने का उसके पास कोई साधन नहीं। दूसरी ओर माया के हृदय में शत-शत बिच्छुओं के दंश की सी पीड़ा हो रही थी। माया भीतर हीं भीतर अपनी विवशता से कम्पित हो उठी। किन्तु उसकी स्वतंत्र प्रकृति ने उसे सँभाला। वह एक बार समाकुल अवश्य हुई, किन्तु फिर सँभल कर कैलाशनाथ की ओर देखती हुई बोल उठी, 'अभी इस की क्या आवश्यकता है पिता जी! जब तक मैं बी० ए० न पास कर लूँ, इस विषय को यहीं छोड़ दीजिये!'

कैलाशनाथ ने देखा, माया बोल तो रही है, किन्तु उस का हृदय आन्दोलित हो उठा है। उसके मनमें एक आँधी उठ खड़ी हुई है, जिसे दबाने का वह भर पूर प्रयत्न कर रही है। कैलाशनाथ जानते थे, कि माया पुलिन को हृदय से चाहती है। किन्तु अब जब पुलिन विवाह करने के लिये तैयार नहीं होता तब वे माया के जीवन को शीघ्र से शीघ्र अजित के जीवन के साथ बाँध कर निश्चिन्त हो जाना चाहते थे। वे यह भी जानते थे, कि अजित के प्रति माया के हृदय में प्रेम नहीं, किन्तु उन्हें आशा थी, कि कदाचित् अब, जब पुलिन ने उपेक्षा प्रदर्शित की है, माया का मन अजित के मार्ग पर आ जाय! अतः वे पुनः बोल उठे, 'विवाह और तुम्हारी पढ़ाई से क्या सम्बन्ध है बेटी! विवाह हो जाने पर भी तुम्हारी पढ़ाई चलती

रहेगी, और अजित से तुम्हें सहायता भी तो मिलेगी!'

माया ने आखों में विवशता भर कर कैलाशनाथ की ओर देखा। कैलाशनाथ स्वयं उसी की ओर देख रहे थे। माया का सिर नत हो गया, और वह कुछ सोचने लगी, किन्तु मौन रहना उस के लिये हितकर न था, अतः वह बोल उठी. 'आपने सभी काम मेरी ही इच्छा के अनुकूल किये हैं पिता जी! मेरी इच्छा है, कि आप इस बात को यहीं छोड़ दें। मैं आप को विश्वास दिलाती हूँ, कि मैं आप के गौरव के अनुकूल ही कार्य करूँगी!'

कैलाशनाथ पुनः कुछ न कह सके, क्योंकि माया के हृदय में जो आँधी उठ खड़ी हुई थी, और जिस की स्पष्ट छाया कैलाश नाथ माया की आकृति पर देख रहे थे, उससे उन्हें दृढ़ निश्चय हो गया, कि माया के मन को पुलिन के मार्ग से हटाना और अजित के मार्ग में लाना बहुत ही दुष्कर है।

[१२]
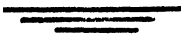
दिन के दो-ढाई बज रहे थे। अजित अपने घर की बाहरी बैठक में चिन्ता पूर्वक बैठा हुआ सिगार पी रहा था। वह रह-रह कर बाहरी द्वार की ओर झाँक भी उठता था। जब कोई आता हुआ न दिखाई देता, तब वह जैसे निराश-सा हो उठता, और उसकी आकृति पर स्पष्टतः एक गहरी चिन्ता खेल जाती। आज कई दिनों से अजित प्रतिक्षण चिन्ता से ही खेलता रहता था। उसे कई मज़दूर-सभाओं में व्याख्यान देने थे, किन्तु उसने अपने सभी कार्य-क्रमों में परिवर्तन कर दिया था। अब वह प्रायः अपने घर में ही रहता, और विचारों के पथ पर दौड़ा करता। कभी-कभी रात को बाहर अवश्य निकलता, किन्तु उस समय भी वह अधिक सतर्क रहता, कि कहीं कोई मित्र उसे पकड़ न ले !

ज्यों ज्यों समय बीत रहा था, त्यों त्यों अजित की चिन्ता भी बढ़ती जा रही थी। वह बार बार आकुल होकर घड़ी की

ओर देख उठता था। जब तीन बज गये, तब अजित का धैर्य जाता रहा, और वह अपने नौकर को बुला कर उससे कुछ कहने ही वाला था, कि उसने देखा, कि सामने के फाटक से एक व्यक्ति साइकिल पर उसके बँगले में चला आ रहा है।

अजित पुनः अपनी कुर्सी पर बैठ गया, और कुछ प्रसन्नता वश सिगार के धुँये ऊपर छोड़ने लगा। उस व्यक्ति ने जब साइकिल बरामदे में रख कर अजित के कमरे में प्रवेश किया, तब अजित उठ कर खड़ा हो गया, और प्रसन्नता से कह पड़ा, 'आवो जी रामलाल, मैं तो बड़ी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ ! कहाँ देर लगा दी !'

'घर से तो ठीक समय पर ही चला था अजित बाबू !—रामलाल ने उत्तर दिया—किन्तु रास्ते में एक परिचित से भेंट हो गई, और उन्होंने पकड़ लिया।'

अजित विचार मग्न होकर कुछ सोच रहा था। रामलाल अपनी बात कह रहा था, किन्तु अजित एक दूसरे ही पथ पर दौड़ रहा था। अजित कुछ देर तक विचार-मग्न रहा। पुनः कुछ गंभीर होकर बोल उठा, 'क्या निर्णय किया आपने रामलाल बाबू !'

रामलाल कुछ विचार-मग्न हो उठा। कुछ देर तक चुप रहा। फिर बोल पड़ा,–निर्णय तो अच्छा ही किया है अजित बाबू, किन्तु मुझे डर है, कि यदि बात खुल गई तो मेरी नौकरी चली जायगी !'

'आप विश्वास रक्खें रामलाल जी !—अजित ने रामलाल के हृदय को अधिक प्रभावित करते हुये कहा—पहले तो यह बात किसी को ज्ञात न होगी, और यदि ज्ञात भी हो गई और आप नौकरी से बिलग कर दिये गये तो मैं आप की नौकरी का प्रबन्ध कर दूँगा।'

रामलाल चुप रहा। अजित को ऐसा लगा, मानों रामलाल उसके साथ-साथ वायु में उड़ने के लिये तैयार है। अजित कुछ देर तक रामलाल की आकृति की ओर देखता रहा। फिर प्रसन्न होकर बोल उठा; 'तो बस ठीक है रामलाल जी, यह लीजिये।'

अजित ने पाँच सौ रुपये के नोट निकाल कर रामलाल के हाथो पर रख दिये। रामलाल का कंठ, और आत्मा, दोनों ही जैसे मूक बन गये। अजित ने उसके हाथो पर रुपये रख कर उसे ऐसा बाँधा, कि वह अब अपने मन में उड़ने की कल्पना तक न कर सका।

पाठक रामलाल को जानने के लिये उत्सुक होंगे। यह रामलाल पुलिन का कम्पाउण्डर था। पुलिन और अजित, समाज में दोनों एक ही श्रेणी के युवक थे, अर्थात् दोनों ही के माता-पिता समृद्धिशाली थे। किन्तु दोनों के विचारों और रहन-सहन में अधिक अन्तर था। पुलिन भारतीय संस्कृति का उपासक था, और अजित अपने जीवन का लक्ष्य नये रूस में देख रहा था। अजित और पुलिन में इस विषय को लेकर कभी-कभी वाद-विवाद भी होता। वाद-विवाद में दोनों ही

अपने अपने पक्षों का प्रतिपादन करते। पुलिन सहृदय होने के कारण वाद-विवाद में कभी अप्रसन्न न होता, किन्तु अजित के हृदय में एक खीझ सी जागृत हो पड़ती। धीरे-धीरे इस खीझ ने एक ईर्षा का स्थान ले लिया। अजित के हृदय की यह ईर्षा उस समय और भी अधिक उग्र हो उठी, जब माया पुलिन और अजित के जीवन-पथ पर आई। वाद-विवाद जनित ईर्षा संभव है अजित के हृदय से निकल भी जाती, किन्तु इस प्रेम जनित ईर्षा ने तो अजित के हृदय में घर कर लिया। अजित प्रति क्षण पुलिन से जलता रहता था, और उसके जीवन को कलंकित करने के लिये मन ही मन साधन भी एकत्र करता रहता था। अजित को जब जहाँ अवसर मिलता पुलिन पर छींटा फेंकने से न चूकता। पुलिन अजित की इस प्रवृति से परिचित था, किन्तु फिर भी वह अपने जन्म जात स्वभाव के कारण उससे बुरा न मानता था और उसका एक यह भी कारण था, कि जिस माया को लेकर अजित के हृदय में ईर्षा की आग जल उठी थी, उस माया के लिये पुलिन के हृदय में कोई विशेष स्थान न था। पुलिन के हृदय में भले ही स्थान न हो, किन्तु माया तो मन ही मन उसके साथ वैवाहिक जीवन का सुख बिताने के लिये कल्पना कर रही थी और उसकी इसी कल्पना ने अजित को पुलिन का ईर्षालु बना दिया था!

अजित जानता था कि माया पुलिन को ही चाहती है, किन्तु वह माया के मन को पुलिन की ओर से हटाने के

प्रयत्न में लगा ही रहता। वह अवसर पाते ही माया के सम्मुख अपने हार्दिक प्रेम का चित्र खींचता, और साथ ही साथ पुलिन का वीभत्स चित्रण भी करने से न चूकता। माया के हृदय पर अजित के इस चित्रणा का बड़ा ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ता। वह मन ही मन खीझ उठती, और उसके मन में अजित के प्रति एक औदास्य भी जाग उठता। धीरे-धीरे इस औदास्य ने घृणा का रूप ले लिया, और अब वह उससे पूर्ण रूप से बचने के लिये प्रयत्न कर रही थी। माया के हृदय की इस भावना ने ही, उस दिन जब लोग पार्टी में खा-पी रहे थे, और अजित एकान्त में जाकर उसके सम्मुख अपने प्रेम का चित्र खींच रहा था, उसे अपमानित करने के लिये प्रोत्साहित किया था!

यद्यपि माया ने अजित को अपमानित करने के उद्देश्य से वे बातें न कही थीं—उसकी बातों में तो उसका हृदय था—किन्तु उससे अजित का अपमान तो हो ही गया, और साथ ही उसके हृदय में पुलिन के प्रति एक भयानक ईर्षा की आग भी धधक उठी। यद्यपि पुलिन का इस में कोई अपराध न था, किन्तु अजित जब अपने अपमान पर विचार करता, तब पुलिन ही कारण रूप में उसके सामने उपस्थित हो जाता था। माया के प्रति उस समय भी उसके हृदय में सहानुभूति और प्रेम था। अतः अजित पुलिन को ही अधिक से अधिक कलंकित करने का प्रयत्न करने लगा। अजित को अब भी आशा थी, कि माया जब पुलिन के जीवन के कलंक पूर्ण चित्रों को देखेगी,

तब उसके मन में उसके प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो जायगा, और वह उसकी ओर आकृष्ट हो जायगी। अजित नीरा और पुलिन को एकान्त में बातें करता हुआ देख चुका था। अब वह नीरा और पुलिन के सम्बन्ध की ऐसी बातें ज्ञात करना चाहता था, जो प्रमाण स्वरूप हों, और जिन्हें वह यदि माया के सामने रख दे, तो माया अविश्वास न प्रगट कर सके, और साथ ही उसके हृदय में पुलिन के प्रति घृणा के भाव भी उत्पन्न हो जायँ। माया द्वारा अपमानित होने के पश्चात् अजित ने अपना संपूर्ण प्रयत्न इसी ओर लगाया। वह सदैव इसी बात की चिन्ता में रहता था, कि किस प्रकार उसे नीरा और पुलिन के संबन्ध की संपूर्ण बातें ज्ञात हो जायँ। 'नीरा कौन है, कहाँ रहती है, किसकी लड़की है, उसका और पुलिन का प्रेम किस सीमा तक आगे बढ़ा है, इत्यादि बातों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अजित सदैव चिन्तित रहा करता था। उसने इन बातों का पता लगाने के लिये अपने कई विश्वस्त व्यक्ति भी नियुक्त कर रक्खे थे। वह गुप्त रूप से स्वयं भी पुलिन की एक-एक बात का पता लगा रहा था। वह स्वयं पुलिन की आँखों को बचा कर पुलिन के अस्पताल के आस-पास चक्कर लगाता और कभी-कभी पुलिन के पास भी पहुँच जाता। उसे विश्वास था, कि वह अवश्य कभी न कभी नीरा को पुलिन के साथ देख लेगा, किन्तु जब वह अधिक प्रयत्न करने पर भी नीरा और पुलिन के किसी ऐसे चित्र को न प्राप्त कर सका जिसके लिये उसका मन तड़प

रहा था, तब उसने बहुत सँभल कर पुलिन के नौकरों पर अपना दाँव फेंका। दाँव फेंकने के पूर्व उसने एक-एक की प्रकृति को भली भाँति तोला कि कौन कितने गहरे पानी में है। जब अजित को पुलिन के नौकरों के सम्बन्ध में यह बात ज्ञात हो गई, तब अजित ने पुलिन के कम्पाउण्डर के ऊपर अपना दाँव फेंक दिया। पाँच सौ रुपये का प्रलोभन था। कम्पाउण्डर जाल में फँस गया। उसने पुलिन और नीरा के सम्बन्ध की संपूर्ण बातें अजित को बता दीं, किन्तु जब उसी क्रम में अजित को यह ज्ञात हुआ, कि कम्पाउण्डर ने कभी पुलिन को नीरा के साथ प्रेमालाप करते हुये नहीं देखा, और साथ ही जब उसे यह भी ज्ञात हुआ, कि अब नीरा कुछ दिनों से पुलिन के अस्पताल में नहीं आती, तब अजित को एक गहरी निराशा हुई। उसने पुलिन के कम्पाउण्डर की सहायता से अपने जिस कल्पना-लोक के निर्माण की आशा की थी, वह प्रायः धूमिल-सी हो गई। उसने सोच रक्खा था, कि वह पुलिन के कम्पाउण्डर की सहायता से नीरा और पुलिन के प्रेम के ऐसे चित्र अवश्य प्राप्त कर लेगा, जो माया के मन में पुलिन के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होंगे, किन्तु पाँच सौ रुपये देने के पश्चात् भी अब अजित को ऐसा लगा कि उसे कुछ न मिला! अजित मन ही मन उद्विग्न हो उठा। किन्तु इस उद्विग्नता में भी उसके हृदय के एक कोने में आशा की एक धूमिल ज्योति जल रही थी, और वह यह कि नीरा और पुलिन के प्रेम-समुद्र को मथने के लिये उसे एक मन्द्राचल प्राप्त हो गया है।

[१३]

गर्मी के दिन थे। मध्याह्न खेल रहा था। पशु, पक्षी, मनुष्य सभी दोपहर के आतप से भयभीत होकर अपने अपने घरों में घुसे थे। अमीर और समृद्धिशाली अपना यह समय खस की टट्टियों और बिजली के फड़फड़ाते हुये पंखों के समीप बिताया करते हैं, किन्तु ग़रीबों के लिये वृक्षों की ठंडी छाया, और उनके झोपड़े ही इस समय ख़स की टट्टियों का काम देते हैं। वे वृक्षों की उस खुली छाया में, जहाँ चारों ओर से गर्म हवायें आकर उनके शरीर को बड़ी स्वतंत्रता के साथ भेदती हैं, सुख की नींद सोते हैं, और आश्चर्य यह है, कि अपूर्व सन्तोष का अनुभव भी करते हैं।

नीरा अपने झोपड़े के पास ही एक सघन आम्र वृक्ष की घनतर छाया के नीचे चिन्ता-मग्न लेटी हुई थी। उसके चारों ओर दूर तक सन्नाटा खेल रहा था। गाँव के किसी-किसी झोपड़े में से कभी-कभी कोई अर्द्धनग्न बालक बाहर निकल आता,

और वह इधर-उधर घूम कर फिर अपने झोंपड़े के भीतर चला जाता। कुछ दूर पर एक वृक्ष के नीचे कुछ गायें और बकरियाँ भी बैठी हुई थीं, जो धीरे-धीरे अपना मुँह डुला रही थीं। कभी-कभी कोई पक्षी भी इस डाल से उड़कर दूसरी डाल पर जा बैठता, और अपने पंखों की फड़फड़ाहट से उस छाये हुये सन्नाटे को भंग करने का प्रयत्न कर देता, किन्तु सन्नाटे की जो हरहराती हुई सरिता उस समय वहाँ बह रही थी, उसकी प्रगति को रोकने के लिये यह सब प्रयत्न नाम मात्र को ही भर प्रमाणित हो रहा था। वह हरहराती हुई बह रही थी, और अखण्ड रूप से बहती ही जा रही थी !

नीरा को उस सरिता के साथ बहने में बड़ा सुखकर प्रतीत हो रहा था। वह उस छाये हुये सन्नाटे की गोद में बड़ी स्वतंत्रता के साथ अपने विचारों के पथ पर दौड़ी जा रही थी। उसकी आकृति पर गम्भीर चिन्ता और दुख के भाव थे। वह आज कई दिन से अधिक चिन्तित और उदास रहती थी। उसने अब शहर जाना भी छोड़ दिया था। चिन्ता और उदासीनता ने उसके हृदय को जर्जर कर दिया था, जिसकी स्पष्ट छाया उसकी आकृति पर झलक रही थी। जमुना बड़ी ही सशंक दृष्टि से नीरा की ओर देख रही थी, और कुछ न कह कर मन ही मन उसकी परिस्थिति पर विचार कर रही थी। कभी-कभी वह नीरा से उसकी चिन्ता और उदासीनता का कारण भी पूछ बैठती थी, किन्तु जब नीरा कुछ उत्तर न देती थी, तब वह भी मौन हो जाती

थी। किन्तु उसके मन में एक रहस्य और सन्देह तो जाग ही पड़ता था, और वह अब शीघ्र से शीघ्र नीरा के जीवन को वंशी के जीवन के साथ बाँध कर अपने मन के रहस्य और सन्देह को बन्धनों से छुड़ा लेना चाहती थी।

जमुना अब नीरा के विवाह के लिये प्रयत्न भी कर रही थी। उसने वंशी के माता-पिता से मिलकर एक दिन भी निश्चित् कर लिया था। किन्तु नीरा चिन्ता और उदासीनता के मार्ग पर दौड़ी ही जा रही थी। वह जब जहाँ रहती, अवसर पाने पर विचार-मग्न हो उठती थी। उसके विचारों का एक मात्र आधार था पुलिन। उसके शहर जाने का वह अन्तिम दिन था, जिस दिन पुलिन ने अपने अस्पताल में उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रक्खा था। उसके पश्चात् पुनः नीरा शहर न गई, और न आज तक उस ने पुलिन को ही देखा। किन्तु पुलिन को देखने के लिये उसका हृदय आकुल रहता था। उसे ऐसा लगता था, मानों उसकी रग-रग में पुलिन का प्रेम बैठा हुआ वंशी बजा रहा है। अब भी उसे ऐसा ही लगता था, कि पुलिन एक देवता ही है, जो मनुष्य होने के कारण नीचे खिसक गया है। नीरा बार-बार अपने मन को बटोरती, और उसे बाँध रखने का प्रयत्न करती, किन्तु उसके मन में पुलिन के प्रति जो भाव उत्पन्न हो गये थे, वे उसे बरबस पुलिन की ओर खींचे लिये जा रहे थे और वह खिंचती जा रही थी।

गर्मी के मध्याह्न में खेलते हुये उस सन्नाटे में नीरा पुलिन

को ही लेकर उलझी हुई थी। रह-रह कर पुलिन उसकी आँखों के सामने आ रहा था, और नीरा उसे प्रत्यक्ष रूप में देखने के लिये आकुल हो रही थी। उसी आकुलता में वह कभी कभी पुलिन के अस्पताल में स्वयं जाकर उसे देखने की बात भी सोच जाती थी, किन्तु न जाने क्यों पुलिन के सामने जाने का अब उसे साहस न हो रहा था। उस दिन उसने जो पुलिन के प्रस्ताव के प्रति अपनी असम्मति प्रगट की थी, उससे अब उस के हृदय में यह आशंका उत्पन्न हो उठी, थी, कि अब न जाने 'कैसा पुलिन उसके साथ व्यवहार करे! उसकी असम्मति से पुलिन के मन में जो दुःख उत्पन्न हो उठा था, उससे नीरा स्वयं भी दुखी थी। किन्तु वह करे क्या, पुलिन ने उसके सम्मुख प्रस्ताव ही ऐसा रक्खा था। यदि पुलिन कहता तो नीरा उसके साथ प्रसन्नता पूर्वक अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर देती, किन्तु वह विवाह तो उसके साथ नहीं कर सकती। विवाह तो नारी का एक ही के साथ होता है, और वह उसका हो चुका है। किन्तु क्या विवाह ही एक ऐसा बन्धन था, जो दोनों को प्रेम के सूत्र में बाँध सकता था? नीरा ने अपने लिये एक अन्य बन्धन का आविष्कार कर लिया था, और वह उसी को लेकर पुलिन की ओर बढ़ने के लिये समाकुल हो रही थी।

नीरा कुछ समय तक अपने और पुलिन के सम्बन्ध पर विचार करती रही। पुलिन को लेकर उसके मन में कई प्रकार के चित्र बने और बिगड़े। उसके मन में इस प्रकार के भी चित्र

बने, कि पुलिन के कारण उससे जमुना, वंशी, और गाँव के समस्त स्त्री-पुरुष अधिक असन्तुष्ट हैं, और वह एक-एक की दृष्टि में नीचे गिर गई है, किन्तु फिर भी वह अपने को पुलिन के प्रेम-पथ पर दृढ़ ही पाती रही। पुलिन का प्रेम, उसके हृदय में नहीं, उसकी आत्मा के भीतर समाविष्ट हो चुका था। उसकी आत्मा उसे रह-रह कर पुलिन के समीप जाने के लिये प्रोत्साहित कर रही थी, किन्तु पुलिन के अस्पताल में जाने के पूर्व एक बार पत्र द्वारा उससे क्षमा माँग लेना उसने उचित समझा। अतः वह उठ कर अपनी झोंपड़ी में गई। झोंपड़ी में जमुना खर्राटे ले रही थी। नीरा चुपके से पेन्सिल और काग़ज लेकर पुनः उसी स्थान में आ गई, और पुलिन को पत्र लिखने का प्रयत्न करने लगी।

वह कुछ देर तक पेन्सिल की नोक कागज़ पर गड़ा कर बैठी रही। उसकी समझ में ही नहीं आता था, कि वह पुलिन को क्या लिखे? उसने पुलिन को पत्र लिखने के लिये अपने मन में कई सम्बोधन सोचे; किन्तु कोई उसकी कसौटी पर ठीक न जँचा। अन्त में बहुत कुछ सोच-विचार के पश्चात् वह 'पुलिन बाबू' के सम्बोधन से पुलिन को पत्र लिखने लगी। कुछ ही समय में उसने पत्र लिख कर समाप्त कर डाला। उसने अपने पत्र में केवल थोड़ी सी पंक्तियाँ लिखी थीं, जिन में उसने उस दिन की घटना-विशेष पर खेद प्रगट किया था, और उसके लिये पुलिन से क्षमा की याचना की थी, साथ ही उसके दर्शन की अभिलाषा भी प्रगट की थी।

नीरा जब पत्र लिख कर समाप्त कर चुकी, तब वह पत्र हाथ में लेकर उसे पुलिन के पास भेजने के लिये अपने उपलब्ध साधनों पर विचार करने लगी। कभी वह सोचती, कि वह स्वयं ही क्यों न शहर जाकर चुपके से उसके अस्पताल के लेटर बाक्स में पत्र डाल आवे, और कभी डाक द्वारा उसके मन में पत्र भेजने का विचार उत्पन्न हो जाता। अभी वह इस सम्बन्ध में सोच-विचार कर ही रही थी, कि सहसा किसी ने पीछे से उसके हाथ से पत्र छीन लिया।

नीरा ने आश्चर्य-चकित होकर पीछे की ओर देखा। पीछे उस का पत्र हाथ में लेकर जमुना खड़ी थी, और उसे पढ़ने के लिये उसके तहों को खोल रही थी। नीरा अपराधिनी की भाँति सिर नत हो गई। और जमुना पत्र खोल कर पढ़ने लगी। एक ही दृष्टि में जैसे जमुना ने पत्र समाप्त कर डाला हो! वह विस्मय पूर्वक बोल उठी 'यह पत्र किसने लिखा है नीरा! क्या तुम ने ?'

नीरा चुप रही। जमुना पुनः बोल उठी, 'किन्तु तुमने यह लिखना कब से सीखा ? पढ़ने-लिखने के नाम पर तो तुम्हें एक अक्षर भ नहीं आता था ?'

जमुना ध्यान पूर्वक पुनः पत्र देखने लगी। पत्र पुलिन के नाम का था, और नीचे हस्ताक्षर नीरा का था। पत्र की पंक्तियों से यह स्पष्ट प्रगट होता था, कि यदि पत्र की लेखिका नीरा ही है, तो वह पुलिन के अस्पताल में प्रति दिन जाती थी,

और दोनों में अगाढ़ प्रेम भी है। जमुना पुनः क्रोध मिश्रित स्वर में बोल उठी, 'यह पत्र किसने लिखा है नीरा, बोलती क्यों नहीं ?'

नीरा फिर भी मौन रही। उसने एक बार सोचा, कि वह कह दे, कि यह पत्र उसका नहीं है। किन्तु उसका मन असत्य का अंचल पकड़ने के लिये उद्यत न हुआ। अत: उसने कुछ उत्तर न देना ही उचित समझा। किन्तु उत्तर न पाकर जमुना जैसे उबल पड़ी और उसके कन्धों को हिलाती हुई कहने लगी, 'मैं तुम्हीं से पूछती हूँ नीरा, यह पत्र किसने लिखा है ?'

अब नीरा को ऐसा लगा, मानों उत्तर दिये हुये बिना काम न चलेगा। वह सिर नत करके धीमे स्वर में बोल पड़ी, 'समझ लो मैंने ही लिखा है !'

तुमने लिखा है !—जमुना क्रोध और विस्मय मिश्रित स्वर में कहने लगी—किन्तु तुम्हें पढ़ना-लिखना किसने सिखाया ? अब मैं समझी, वह डाक्टर अपने शरीर पर सज्जनता का आवरण डाल कर प्रति दिन यहाँ क्यों आया करता था ? आखिर मेरा सन्देह ठीक निकला !

जमुना यदि पुलिन के चरित्र पर कलंक न लगाती तो नीरा इस बार भी मौन ही रहती, किन्तु अब जब जमुना पुलिन को पंक में घसीटने के लिये उद्यत थी, तब नीरा को बोलना ही पड़ा, 'पुलिन बाबू के प्रति मन में ऐसे विचार न लाओ माँ ! वे बड़े अच्छे आदमी हैं।'

होगा अच्छा आदमी !—जमुना क्रोध के स्वर में गर्ज उठी—यदि अच्छा आदमी न होता तो हाथ में धोखे का अमृत-कलश लेकर तुम्हें विष कैसे पिलाता ! तू भी आज उसके दिये हुये विष को पीकर उन्मत्त हो रही है। यदि मैं जानती तो उसी दिन तेरा गला घोंट देती, जिस दिन तुमने इस धरती पर पैर रक्खा था।

जमुना की आकृति पर दुःख, घृणा और उपेक्षा के भाव थे। वह एक ही साथ अपने इन भावों की वर्षा नीरा के ऊपर करके क्रोधावेश में झोंपड़ी की ओर मुड़ना चाहती थी, कि नीरा पुनः बोल उठी, और जमुना रुक गई, 'पुलिन बाबू ने मुझे विष नहीं दिया है माँ। मैं तो समझती हूँ, कि उन्होंने मुझे अमृत ही पिलाया है।'

जमुना क्रोध से काँप उठी। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह उसी आवेश में कह पड़ी, 'तो जा पी न उसी के हाथों से और अमृत ! मैं तेरा अब मुँह नहीं देखना चाहती। हाय भगवान ! तू इतनी निर्लज्ज हो गई।'

जमुना का क्रोध पिघल पड़ा और विवश होकर आँखों में अश्रु बूँदों के रूप में चमक उठा। वह यह कहते हुये, 'जा मैंने समझ लिया, कि तू मेरी कोख से उत्पन्न ही नहीं हुई' क्रोध के साथ झोंपड़ी की ओर मुड़ पड़ी।

नीरा ने देखा, जमुना की आँखों में आँसू छलक आये हैं। उसने झपट कर जमुना को पकड़ लिया, और साथ ही साथ कह

उठी 'तुम भूल रही हो माँ! बिना सोचे-समझे किसी पर कलंक लगाना ठीक नहीं। पुलिन बाबू को तुमने अपने हृदय में जिस प्रकार का मनुष्य समझ रक्खा है, उनके व्यवहारों और कामों पर विचार कर देखो क्या वे उस प्रकार के निम्न कोटि के व्यक्ति हो सकते हैं? उन्होंने जिस प्रकार तुम्हारी सेवा की वे जिस प्रकार असहायों और ग़रीबों की सहायता करते-फिरते हैं, क्या उस प्रकार के व्यवहार की आशा तुम उस पुलिन से कर सकती हो जिसकी तुमने अपने हृदय में कल्पना कर ली है। मैं कहती हूँ माँ पुलिन बाबू ने मेरे साथ विश्वासघात नहीं किया······।'

जमुना आश्चर्य-चकित होकर नीरा की आकृति की ओर देख रही थी। नीरा कहती जा रही थी, और जमुना की समझ में ही नहीं आ रहा था, कि वह क्या कह रही है। जैसे वह किसी जाल में उलझ गई हो, और उससे अपनी मुक्ति की आशा न देख कर अधिक दयनीय हो उठी हो। नीरा कहते-कहते कुछ रुक सी गई। उसने जमुना की आकृति की ओर देखा। जमुना आँखों में विस्मय भर कर नीरा की ओर देख रही थी। नीरा पुनः बोल उठी, 'तुम्हें मेरी बातों पर आश्चर्य हो रहा है माँ! मैं सच कहती हूँ पुलिन बाबू देवता हैं। उन्होंने मुझ पर बहुत उपकार किये हैं। उन्होंने ही आज मुझे इस योग्य बना दिया है कि मैं पत्र लिख सकती हूँ, अख़बार और पुस्तकें पढ़ सकती हूँ। यह सच है माँ कि यह सब मैंने तुमसे छिपाकर

किया, किन्तु उसके साथ ही यह भी सच है, कि पुलिन बाबू ने मेरे साथ विश्वासघात नहीं किया। जिस प्रकार एक बहन अपने भाई को प्रेम करती है, उसी प्रकार मैं भी पुलिन को चाहती हूँ माँ! पुलिन का प्रेम मेरे लिये ईश्वर का वरदान है। मैं उसे नहीं छोड़ सकती माँ, नहीं छोड़ सकती!'

नीरा कहते-कहते रो पड़ी। उसकी आँखों से मोतियों की भाँति आँसू गिरने लगे। उसकी दृढ़ता, और उसकी आकृति पर खेलती हुई ज्योति से जमुना के हृदय में छाई हुई संदेह की कालिमा अदृश्य हो उठी। जमुना का हृदय अब प्रेम और सहानुभूति से द्रवित हो उठा। उसने नीरा को अपने अंक से लगाते हुये कहा, 'मुझसे भूल हुई बेटी क्षमा करो, किन्तु फिर भी नीरा, तुम्हें सतर्क होकर चलना चाहिये। दो-चार दिन में ही अब तुम्हारा विवाह होने वाला है। मान लो यदि मेरे स्थान पर आज वंशी होता तो क्या होता?'

तो क्या होता!—नीरा अब रुद्ध कंठ से दृढ़ता प्रगट करती हुई बोल उठी—साँच को आँच का क्या डर? क्या वंशी की बहन वंशी को प्रेम नहीं करती? फिर यदि मैं पुलिन बाबू को प्रेम करती हूँ, या उन्हें पत्र लिखती हूँ तो इसमें विस्मय की बात क्या?

तू नहीं समझती नीरा!—जमुना कहने लगी—संसार में फूंक-फूंक कर पांव रखने में भी कलंक लगते हैं। किसी युवती और युवक को एकान्त में देखकर, चाहे उनका पारस्परिक

सम्बन्ध अधिक पवित्र ही क्यों न हो, लोगों का ध्यान बहुत शीघ्र कालिमा की ओर दौड़ पड़ता है, और फिर जब एक बार लोग किसी के प्रति कुछ सोच लेते हैं, तो निरन्तर उसकी जड़ जमती ही जाती है। अविवाहिता लड़कियों के संबंध में जब दुर्भाग्य से ऐसी बातें उठ खड़ी होती हैं, तब उन बेचारियों का जीवन अधिक संकट पूर्ण हो उठता है। इसीलिये मैं कहती हूँ बेटी, ज़रा सँभल कर चल ! पुरुष के हृदय में बहुत शीघ्र सन्देह की जड़ पकड़ती है। मानलो, यदि वंशी तुम्हारे और पुलिन के प्रेम को जान ले, और वह अपने हृदय में कोई दूसरी बात समझ ले तो······।

जमुना ने जो चित्र नीरा के सम्मुख खींचा, उससे नीरा का हृदय भी भयभीत हो उठा। उसे ऐसा लगा, कि वस्तुतः वह अपनी सीमा से बहुत दूर आगे निकल गई है, और हो सकता है, कि वह गिर पड़े, किन्तु अब तो वह निकल ही गई है, और लौटने में विवश है। नीरा विवश होकर जमुना की ओर निहार उठी। जमुना नेत्रों में पाश्चात्ताप भर कर नीरा की ओर देख रही थी। माँ बेटी, दोनों ही अपने-अपने मन के पाश्चात्ताप की सरिता में बह चलीं। कौन कह सकता है, कि पाश्चात्ताप के अतिरिक्त दोनों के मन में और क्या-क्या था ?

—:※:—

[१४]

रविवार का दिन था। संध्या के चार बज रहे थे। बाबू कैलाशनाथ के मिल में काम करने वाले मज़दूर धीरे-धीरे वंशी के गाँव में एकत्र हो रहे थे। वंशी स्वयं कैलाशनाथ की मिल में काम करता था, और मिल में काम करने वाले मज़दूरों के अधिकारों के लिये जो संघ बना था, उसके काम में वंशी बड़ी तन्मयता से भाग लेता था। अजित उस संघ का मंत्री था। अतः अजित और वंशी, दोनों एक दूसरे से भली भाँति परिचित थे।

रविवार को मिल में छुट्टी थी, और सन्ध्या समय वंशी के गाँव में मजदूरों की एक सभा होने की घोषणा की गई थी, जिसमें अजित का व्याख्यान होने वाला था। इस सभा के प्रबन्ध का भार वंशी ही के ऊपर रक्खा गया था। वंशी बड़ी तन्मयता से सभा के लिये आवश्यक चीज़ें एकत्र कर रहा था। वह सवेरे से ही इस कार्य में लगा था। उसने आस-पास के कई गाँवों के

किसानों को भी सभा में आने के लिये निमंत्रित किया था। ज्यों-ज्यों समय निकट आ रहा था, त्यों-त्यों लोग एकत्र भी हो रहे थे। बेलदारों की उस छोटी सी बस्ती में प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बच्चे के लिये उस दिन वह सभा अधिक विस्मय और मनोरंजन की वस्तु बन गई थी।

वंशी जब सारा प्रबन्ध कर चुका, तब वह एक बार सभा-स्थल में गया। वह अपनी आँखें दौड़ाकर इधर-उधर देखने लगा। उसे सैकड़ों मजदूर और किसान बैठे हुये दिखाई पड़े। एक ओर उसने अपने गाँव की स्त्रियों को भी देखा। उन्हीं स्त्रियों में उसे जमुना भी बैठी हुई मिली। वंशी ध्यान-पूर्वक उसी ओर देखने लगा। मानों स्त्रियों के उस झुण्ड में वह किसी को खोज रहा हो। वंशी को कुछ निराशा हुई। उसे ऐसा लगा, कि उसके हृदय का सारा उत्साह वायु में उड़ता जा रहा है। वंशी निराशा से आहत मन लेकर एक स्थान में बैठ गया। किन्तु कुछ ही देर के पश्चात् पुनः उठा और अपने गाँव की ओर चल पड़ा। अभी सभा की कार्यवाही आरम्भ होने में कुछ विलम्ब था। क्योंकि अभी लोग चले आ रहे थे, और अजित भी न आया था।

वंशी गाँव में एक स्थान पर जाकर रुक गया। उसने देखा, 'सामने नीरा हाथ में घड़ा लेकर जमुना में पानी लेने के लिये जा रही है। वंशी उसे पुकार उठा, 'नीरा, ओ नीरा!' नीरा रुक गई। वंशी ने उसके समीप पहुँच कर कहा, 'अरे, तू अभी पानी

के लिये जा रही है ? क्या सभा में न चलेगी ? मैं तो तुम्हें वहाँ खोज रहा था !'

'हाँ, मैं सभा में न जाऊँगी !—नीरा ने वंशी की ओर देखते हुये उत्तर दिया—आज मेरा जी अच्छा नहीं है ।'

वाह !—वंशी बोल उठा—जमुना से जल भर कर लाने के लिये जी अच्छा है, और सभा में जाने के लिये जी अच्छा नहीं है । वहाँ तुम्हें कुछ परिश्रम तो करना पड़ेगा नहीं । बैठी-बैठी व्याख्यान सुनना और फिर चली आना । चलकर देखो, तो मजदूर किस प्रकार संगठित हैं !

होंगे !—नीरा उपेक्षा के साथ कहने लगी—सच बात तो यह है, कि इस सभा में जाने को मेरा जी नहीं चाहता । मां गई है, जो कुछ वहाँ होगा, मुझे भी आकर बता देगी !

वाह !—वंशी ने कुछ आवेग के साथ कहा यह मजदूरों की सभा है, और मजदूरों की सभा में जाने को तुम्हारा ज नहीं चाहता । एक मजदूर स्त्री को इस प्रकार की बातें नहीं कहना चाहिये नीरा ! यह सभा देश और देश के मजदूरों के हित के लिये बड़ा काम कर रही है ।

करती होगी !—नीरा ने कुछ गम्भीर होकर उत्तर दिया !—किन्तु मैं तो जब भारत के किसानों और मजदूरों को लाल झंडे की छाया में देश-भक्ति के पथ पर चलती हुई देखती हूँ, तब मुझे उससे गहरी निराशा ही होती है । जानते हो, यह झंडा किसी दूसरे देश का है । जिस दल के पास अपने देश का झंडा

भी नहीं, वह दल अपने देश और समाज की ममता पर मर सकता है, इसकी मुझे आशा नहीं !

नीरा की आकृति पर गम्भीरता खेल गई, और साथ ही वह कुछ विचार-मग्न भी हो उठी। वंशी विस्मय में पड़ कर नीरा की आकृति की ओर देखने लगा। वह नीरा की अनुभव और ज्ञान-पूर्ण बातों में उलझ पड़ा, और साथ ही ,बोल उठा, 'फिर देश का कौन सा झंडा है नीरा ! क्या वह तिरंगा ?'

नीरा गम्भीर होकर विचारों के पथ पर दौड़ रही थी। वंशी के प्रश्न ने उसे अपनी ओर आकर्षित किया, और वह बोल पड़ी, 'नहीं वह भी नहीं ! वह तो कृत्रिम है और अभी थोड़े दिनों से आवश्यकता की पूर्ति के लिये बना लिया गया है।'

फिर अपने देश का कौनसा झंडा है नीरा !—वंशी ने मन ही मन नीरा के ज्ञान और उसकी बातों पर आश्चर्य प्रगट करते हुये कहा !

अपने देश का तो केवल एक ही झंडा हो सकता है—नीरा गम्भीरता पूर्वक बोल उठी—और वह है वही केसरिया। तुमने उसे देखा भी होगा !

किन्तु यह झंडा तो अब बहुत कम दिखाई देता है नीरा !—वंशी ने नीरा की बातों से प्रभावित हो कर कहा !

यह हमारा और देश का दुर्भाग्य है !—नीरा गम्भीरता के स्वर में बोल पड़ी—झंडा ही नहीं, आज तो हमारे पास अपनी कोई वस्तु नहीं; और आश्चर्य तो यह है, .कि हमने

अपनी वस्तुओं का परित्याग करना ही अपने लिये उन्नति का मूल मंत्र समझ लिया है।

वंशी आँखों में विस्मय भर कर नीरा की आकृति की ओर देखने लगा। उसे ऐसा लगा, कि नीरा बहुत बड़े ज्ञान की बातें कर रही है। नीरा की इन बातों से उसे अपना अस्तित्व अपनी ही दृष्टि में बहुत तुच्छ-सा जँच रहा था। वंशी कुछ देर तक मौन रह कर नीरा से पुनः कुछ पूछने ही वाला था, कि पीछे से कोई बोल उठा, 'अरे वंशी तुम यहां हो ? सभा में कितने आदमी आये होंगे ?'

वंशी ने मुड़ कर देखा, हाथ में समाचारपत्र लिये हुये अजित खड़ा था। वह सभा में व्याख्यान देने के लिये अभी अभी शहर से चला आ रहा था। वंशी ने झट दोनों हाथ जोड़ कर अजित से नमस्ते किया। किन्तु जब अजित ने वंशी के साथ ही साथ नीरा को देखा, तब वह विस्मय और विचार-मग्न सा हो उठा। वह वंशी के नमस्ते का उत्तर न देकर झट बोल उठा, 'अरे वंशी यह कौन लड़की है ?'

वंशी ने एक बार नीरा की ओर देखा, और फिर अजित की ओर। अजित की ओर देख कर वंशी रहस्यमय ढंग से मुसकुरा उठा। नीरा अजित को देख कर मन ही मन विस्मय के समुद्र में डूबी जा रही थी, और उसके मन में भावों के तूफान से जाग पड़े थे। किन्तु जब वंशी उसकी ओर देखने के पश्चात् अजित की ओर देख कर मुसकुरा उठा, और नीरा ने

उसे देख लिया, तब उसके हृदय में कुछ लज्जा का संचार सा हो आया, और वह एक बार संदिग्ध दृष्टि से अजित की ओर देख कर जमुना की ओर चल पड़ी।

अजित नीरा को देखते ही विचार मग्न हो उठा था। वंशी का मुसुकुराना और नीरा का लज्जित हो जाना देख कर अजित को यह जानने में विलम्ब न लगा, कि इन दोनों का आपस में कोई मधुर सम्बन्ध है। अजित कुछ देर तक मौन रहा। पुनः वह नीरा को जाती हुई देख कर बोल उठा, 'अरे मैंने तो इसे पुलिन के यहाँ देखा था? यह तो पुलिन के अस्पताल में प्रति दिन पढ़ने जाती थी?'

पढ़ने जाती थी!—वंशी विस्मय के स्वर में बोल उठा—क्या इसने पढ़ लिख लिया है अजित बाबू! किन्तु इसने तो मुझ से कभी बताया तक नहीं! (कुछ रुक कर) अच्छा, तभी आज बढ़-चढ़ कर बातें कर रही थी।

सचमुच वंशी!—अजित वंशी को प्रोत्साहित करता हुआ बोल उठा—क्या इसने कभी अपने पढ़ने-लिखने की चर्चा तुमसे नहीं की! यह तो प्रति दिन पुलिन डाक्टर के पास, पढ़ने के लिये जाती थी, और अब इसने समाचार पत्र और पुस्तकें पढना भली भाँति सीख लिया है।

वंशी विचार-निमग्न हो उठा। उसके हृदय में एक आँधी उठ खड़ी हो गई, जो स्वयं उसी को अज्ञात दिशा की ओर उड़ा कर लिये जा रही थी। वंशी की यह परिस्थिति अजित से छिपी न

रही। वह उसके हृदय में जागृत ईर्षाग्नि को दबाने के बहाने उसे और भी अधिक उत्तेजित करने के उद्देश्य से बोल उठा, 'जाने दो वंशी, इन स्त्रियों की ऐसी ही रहस्य मय प्रकृति होती है। अब चलो, सभा में चलें। समय हो गया है।'

वंशी कुछ न बोला। उसके हृदय में संदेह और ईर्षा की जो आग धधक उठी थी, वह भीतर ही भीतर उसी से दग्ध होता जा रहा था। अजित ने वंशी का हाथ पकड़ लिया। दोनों साथ-साथ सभा-स्थल में गये। अजित सभा के मंच पर चढ़ कर बोलने लगा, किन्तु वंशी ईर्षा और सन्देह की वायु में उड़ता जा रहा था। उसे ज्ञात ही न हुआ, कि अजित ने कब बोलना प्रारम्भ किया, और कब वह बोल चुका। सभा समाप्त होने पर जब लोग उठ-उठ कर जाने लगे, और अजित ने वंशी को पुकारा, तब उसे जैसे अपनी परिस्थिति का अनुभव हुआ। वह अपने स्थान से उठा, और अजित को पहुँचाने के लिये उसके साथ-साथ सड़क की ओर चल पड़ा।

अजित की बातों से वंशी के हृदय में नीरा के प्रति जो सन्देह की आग उत्पन्न हो उठी थी, वह अब इस एकांत में और अधिक प्रज्वलित होने के लिये प्रोत्साहित हो उठी। अजित की बातों से वंशी को ऐसा लगा था, कि नीरा उससे बहुत कुछ गुप्त रखती है और अब वह इस एकान्त में उसके समस्त गुप्त रहस्यों को जान ही लेगा! अतः वंशी बोल उठा, 'क्या नीरा प्रति दिन पुलिन के अस्पताल में पढ़ने जाती थी अजित बाबू?'

हाँ जाती तो थी वंशी !—अजित ने वंशी की आकृति की ओर देख कर उत्तर दिया—किन्तु वंशी तुम इस बात को बार बार क्यों पूछते हो ? क्या नीरा, और तुम किसी सम्बन्ध-सूत्र में बँधे हो ?

वंशी कुछ देर तक मौन रहा। फिर कह पड़ा, हाँ अजित बाबू, उसके साथ मेरा विवाह होने वाला है।

विवाह होने वाला है !—अजित आश्चर्य के स्वर में बोल उठा—किन्तु वंशी, मैंने तो सुना है ……………!

अजित रुक गया। किन्तु अजित के इस 'किन्तु' ने तो वंशी के हृदय की आँधी को और भी अधिक उग्र बना दिया, और वह अजित की ओर निहार कर बोल उठा, किन्तु क्या अजित बाबू ? कहते-कहते आप रुक क्यों गये ?

अजित अपने विचारों में निमग्न था। उसके मन में विभिन्न प्रकार के विचारों के चित्र बन और बिगड़ रहे थे। वंशी के प्रश्न ने उसे विचारों के पथ पर दौड़ने से रोक लिया। अजित मन ही मन कुछ स्थिर कर बोल उठा, 'जाने दो वंशी' इस बात को, क्या करोगे जान कर ? नीरा के साथ जब तुम्हारा विवाह हो रहा है, तब तुम्हें अब उसके सम्बन्ध में अपने मन के किसी कोने में सन्देह को न बैठने देना चाहिये !

अजित ने यह बात इस ढंग से कही, जिससे वंशी को यह ज्ञात हो गया, कि नीरा पुलिन के यहाँ पढ़ने ही नहीं जाती थीं, बल्कि उसके साथ उसका कोई सम्बन्ध भी है। वंशी के हृदय का

सन्देह और भी अधिक प्रबल हो उठा, और वह पूछ पड़ा, 'विवाह हो जाने के पश्चात् यदि कुछ रहस्य खुला तो सारा ज़ीवन रोते ही बीतेगा। भलाई तो इसी में है, कि पहले ही सब कुछ सामने आजाय। आप छिपाइये न अजित बाबू! जो कुछ जानते हों कृपा कर के बता दीजिये।'

अजित कुछ देर तक मौन रहा। फिर वंशी की ओर देख कर कहने लगा, 'जब तुम नहीं मानते वंशी, तो सुनो! पुलिन और नीरा दोनों एक दूसरे को अधिक प्रेम करते हैं। पुलिन के कम्पाउण्डर ने स्वयं कई बार पुलिन और नीरा को पारस्परिक प्रेम का अभिनय करते हुये देखा था, और मैंने तो यह भी सुना था वंशी, कि पुलिन इस लड़की से विवाह भी करना चाहता है। उसने इसी लिये कैलाशनाथ बाबू की लड़की, माया देवी, के साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया है।'

बंशी और अजित दोनों अब तक सड़क पर पहुँच गये थे। वंशी के प्रश्नों की मंजिल भी अब समाप्त हो गई थी। वह मन ही मन संदेह और ईर्षा की आग से जला जा रहा था। अजित सड़क पर स्थित ताँगे पर बैठ कर बोल उठा, 'फिर भी कोई हर्ज नहीं वंशी विवाह कर लो!'

अजित का ताँगा चल पड़ा, और वंशी के हृदय में संदेह, ईर्षा, दुख, और क्रोध का ऐसा ज्वालामुखी फूटा, कि वंशी विचार भ्रष्ट होने के साथ ही साथ पथ-भ्रष्ट भी हो उठा।

—:०:—

[१५]

प्राकृति के रंग मंच पर संध्या खेल रही थी। अभी घना अंधकार न हुआ था, किन्तु अंधकार की एक धुँधली रेखा चारों ओर दौड़ चली थी। सड़क पर बिजली की बत्तियां जल गई थीं, और लोग अपने-अपने घरों में भी दीपक चलाने का प्रबन्ध कर रहे थे। पुलिन अपने अस्पताल के कमरे में उदास मुख कुर्सी पर बैठा हुआ विचारों के पथ पर दौड़ रहा था। महीनों हो गये, वह अधिक चिन्तित और उदास रहा करता था। कोई भी काम होता, अब वह उसे पूर्व जैसे उत्साह और तन्मयता के साथ न करता। जैसे स्फूर्ति और कार्य-तन्मयता, दोनों ने ही उससे अपना नाता तोड़ लिया हो। वह जब जहाँ रहता, एक चिन्ता उसकी आकृति पर खेलती रहती, और उस चिन्ता में होती, वह नीरा जो उसके अन्तर के कोने-कोने में संगीत की मधुरता की भाँति गूँज उठी थी!

पुलिन प्राय: अपनी और नीरा की उन बातों पर विचार किया करता, जो किसी विशेष दिन उन दोनों के बीच में हुई थीं। उन बातों पर विचार करने से पुलिन को ऐसा लगता, मानों वह अपने स्थान से बहुत नीचे गिर गया है। अपने स्थान को देख कर जब पुलिन नीरा के स्थान की ओर देखता, तब उसकी आत्मा लज्जा से रो पड़ती, और वह सोचने लगता, न जान नीरा ने उसे अपने मन में क्या सोच लिया होगा!

यही एक वेदना थी, जो पुलिन के हृदय को प्रति क्षण मंथन किया करती थी। पुलिन ने कई बार सोचा, कि वह नीरा के गाँव में जाकर उससे मिलकर क्षमा माँगे, किन्तु नीरा के सामने जाने के लिये उसकी लज्जित आत्मा में साहस ही न होता था। उसकी आत्मा को संकोच और लज्जा ने आग्रस्त कर लिया था। किन्तु उसके मन में जो वेदना उत्पन्न हो उठी थी, उससे उसका मन नीरा से मिलने और उससे मिलकर क्षमा माँगने के लिये रह-रह कर तड़प अवश्य उठता था। आज भी पुलिन के मन में यही तड़प थी। पुलिन का मन रह-रह कर नीरा की ओर दौड़ रहा था, किन्तु लज्जा और संकोच भी रह-रह कर उसके मन को बाँध रहे थे। लज्जा और संकोच के कारण पुलिन सोच जाता, 'जाने नीरा मिले या न मिले! हो सकता है, उसने अपनी माँ से भी कह दिया हो, और उसे देखते ही उसकी माँ उबल पड़े!' किन्तु पुलिन के मन में उठी हुई वेदना रह-रह कर लज्जा और संकोच के आवरण को दूर हटा देती थी, और उसके मन

में नीरा से मिलने के लिए एक आकुलता उत्पन्न कर देती थी। सच बात तो यह थी, कि पुलिन के अन्तर के किसी कोने में नीरा के प्रति गहरा प्रेम छिपा हुआ था, जो रह-रह कर उसके मन को उकसा रहा था. और आँखें उसे देखने के लिये उतावली हो रही थीं।

पुलिन कुछ देर तक विचारों के द्वन्द में उलझा रहा। अन्त में हृदय और हृदय की वेदना के नीचे लज्जा, संकोच, और झिझक दब से गये। पुलिन अपने कमरे से निकला, और साइकिल पर चढ़कर नीरा के गाँव की ओर चल पड़ा।

चाँदनी रात थी। चारों ओर दूध की एक धारा सी बह रही थी। लगभग सात बज रहे थे। पु लन का विचार था, कि वह नीरा के घर जाकर नीरा और उसकी माँ से मिलकर शीघ्र ही लौट आयेगा। वह नीरा के घर जाकर किस प्रकार बातचीत प्रारंभ करेगा, नीरा से किस प्रकार क्षमा माँगेगा, यदि जमुना ने पूछा, कि तुमने अ आना-जाना क्यों छोड़ दिया तो वह क्या कहेगा, पुलिन अपने इन्हीं विचारों में उलझा हुआ साइकिल पर चला जा रहा था। सहसा निर्जन मैदान में पहुँच कर वह किसी चीज़ से टकरा कर साइकिल से गिर पड़ा।

पुलिन शीघ्र सँभल कर उठ कर खड़ा होगया। वह जब अपनी साइकिल उठाने के लिये पीछे मुड़ा तो उसे यह देखकर अधिक आश्चर्य हुआ, कि एक व्यक्ति हाथ में छुरा लेकर उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देख रहा है।

पुलिन ने उस व्यक्ति को ध्यान से देखा, और फिर वह शीघ्र बोल उठा, 'अरे वंशी तुम !'

सचमुच वह वंशी ही था। अजित ने वंशी के हृदय में ईर्षा और संदेह की जो आग उत्पन्न की थी, वह अधिक प्रबल हो उठी थी। नीरा की बातों और उसकी रहन-सहन में अब जो अन्तर आगया था, उसने अजित के उत्पन्न किये हुये सन्देह को वंशी के हृदय में दूर-सुदूर तक पहुँचा दिया। वंशी ईर्षा और क्रोध में उन्मत्त-सा हो उठा। उसने पहले नीरा, और पुलिन, दोनों की हत्या करने का संकल्प किया। किन्तु अन्त में उसने अपना विचार बदल दिया, और केवल पुलिन की ही हत्या करके उसके वियोग की आग में नीरा को जलाना ही अपना उद्देश्य निश्चित् किया। वंशी प्रति दिन पुलिन की हत्या की घात में रहता था। वह इसी उद्देश्य से कई बार शहर भी गया। वह प्राय: पुलिन की खोज में नगर के आस-पास और सड़क पर घूमा करता था। उसे यह भी विश्वास था, कि किसी न किसी दिन पुलिन अवश्य उसके गाँव में आयेगा। इसी आशा से वह अपने गाँव के समीप वाली सड़क पर भी उसकी टोह में गोधूलि के अंधकार में छिप कर बैठा रहता था। आखिर आज पुलिन उसे मिल ही गया, और उसने टक्कर देकर पुलिन को साइकिल से नीचे गिरा दिया।

वंशी पुलिन की बात का कुछ उत्तर न देकर उस पर झपट पड़ा। पुलिन साइकिल छोड़कर बचने का प्रयत्न करने लगा,

और साथ ही वह कह पड़ा, 'अरे, अरे, वंशी, तुम पागल तो नहीं हो गये हो ?'

किन्तु वंशी ने कुछ उत्तर न दिया। वह जिस गति से पुलिन के शरीर में लिपटा था, उसी गति से लिपटा रहा, और तीव्र छुरे से उसके कन्धे पर आघात कर दिया।

पुलिन आह मार कर भूमि पर गिर पड़ा। वंशी अपना छुरा सँभाल कर पुनः पुलिन पर आघात करने ही वाला था, कि उसे सामने से आती हुई मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। वंशी आकुल हो उठा। उसकी सारी उत्तेजना भय में परिवर्तित हो गई और वह छुरा सड़क पर फेंक कर एक ओर भाग कर आँखों से ओझल हो गया।

आहत पुलिन भूमि पर गिरते ही मूर्च्छित हो गया था। यदि मोटर का हार्न न बजता तो आश्चर्य नहीं, कि पुलिन की वही मूर्च्छना मृत्यु के रूप में परिवर्तित हो जाती, और फिर वह आँखें न खोल सकता, न खोल सकता !
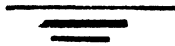
[१६]

सवेरे के आठ-नौ बज रहे थे। पुलिन आहत रूप में अस्पताल में पड़ा था। उसके कन्धे में छुरा गहराई से धँस गया था, अतः उसकी मूर्च्छना अभी तक न टूटी थी। डाक्टर उपचार कर रहे थे। प्रमोदराय, और कैलाशनाथ, इत्यादि लोग बाहर बैठ कर पुलिन के होश में आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। डाक्टर ने पुलिन के घाव की परीक्षा करके उन्हें यह विश्वास दिला दिया था, कि घाव यद्यपि कुछ गहरा है, किन्तु भय की कोई बात नहीं है।

डाक्टर पुलिन की चारपाई के पास कुर्सी पर बैठ कर उसकी आकृति की ओर देख रहे थे। मूर्च्छना के दस-बारह घंटे व्यतीत हो चुके थे, अतः डाक्टर के मन में भी धीरे-धीरे एक चिन्ता उत्पन्न हो रही थी।

सहसा पुलिन कराह उठा, और उसकी आँखें भी खुल गईं। डाक्टर प्रसन्नता से यह कह कर उछल पड़े 'ईश्वर को बहुत-बहुत धन्यवाद।' पुलिन ने अपनी आँखें खोल कर इधर-उधर देखा वह कुछ देर तक मन ही मन विचार करता रहा। मानों घटनाओं का तारतम्य ठीक कर रहा हो। सहसा उसका ध्यान

पैरों की ओर आकर्षित हुआ और वह बोल उठा, 'अरे माया तुम !' साथ ही वह माया की ओर देखने लगा।

माया चुप रही। किन्तु डाक्टर बोल उठे. 'माया देवी ने ही तो आपको बचाया है पुलिन बाबू! यदि ये अवसर पर न पहुँच जातीं, तो वह आक्रमणकारी निश्चय आज···।'

पाठक माया को यहाँ देखकर आश्चर्य-चकित हुये होंगे। मैं पाठक का ध्यान उस समय की ओर आकर्षित कर रहा हूँ, जब माया ने चाँदनी रात में लान पर बैठकर पुलिन के प्रेम को प्राप्त करने के लिये उत्सर्ग पथ पर चलने का निश्चय किया था। माया उस निश्चय के पश्चात् परिवर्तन के रँग में रंग गई। वह पाश्चात्य संस्कृति, रहन-सहन और वेष-भूषा को छोड़ कर भारतीयता के साँचे में ढल उठी। ग़रीबों से प्रेम करने के लिये, और दुखियों की सहायता को उसने अपने जीवन का मूल मंत्र बना लिया। युनिवर्सिटी छोड़ कर वह एक आदर्श भारतीय नारी बनने का प्रयत्न करने लगी। उसे दृढ़ विश्वास था, कि वह उत्सर्ग पथ पर चल कर पुलिन को अपनी ओर अवश्य आकर्षित कर लेगी, और इसी आशा में वह तीव्र गति से उत्सर्ग की ओर बढ़ती जा रही थी।

उस दिन रात में जब वंशी ने पुलिन पर आक्रमण किया, माया मोटर पर एक गाँव में गई थी, और वहाँ से लौट रही थी। दूर से ही, सड़क पर, दो व्यक्तियों को उलझते हुये देखकर उसने हार्न बजाया। समीप आने पर वह मोटर से नीचे

उतरी, और उसने चाँदनी के प्रकाश में देखा, रक्त से लथ-पथ पुलिन पड़ा। माया ने सहायता के लिये पुकार मचायी। उसकी पुकार को सुन कर इधर-उधर रास्तों में जाते हुये कुछ लोग एकत्र हो गये। उनमें दो-एक नीरा के गाँव के बेलदार भी थे, जो शहर से लौट रहे थे, और पुलिन को अच्छी तरह जानते थे। माया शीघ्र पुलिन को मोटर में लेटाकर अस्पताल ले गई। अस्पताल से ही उसने प्रमोदराय और कैलाश नाथ को भी इसकी सूचना दी और सब उसी समय से बड़ी आकुलता के साथ पुलिन के होश में आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

पुलिन के होश में आने पर प्रमोदराय और कैलाशनाथ, जो अभी तक बाहर कमरे में बैठे हुये थे, भीतर चले गये। जिस समय ये दोनों व्यक्ति भीतर पहुँचे पुलिन माया को बड़े ध्यान से देख रहा था। सादगी, सेवा और उत्सर्ग-भावना के कारण माया की आकृति पर जो ज्योति उत्पन्न हो उठी थी, उससे आहत पुलिन का मन बरबस माया की ओर खिंचता जा रहा था। पुलिन माया की ओर देख कर कुछ बोलने ही वाला था, कि प्रमोदराय बोल उठे, 'तुम पर किसने आक्रमण किया था बेटा! क्या तुम उसे पहचानते हो?'

पुलिन कुछ देर तक मौन रहा। जैसे मन ही मन कुछ सोच रहा हो। फिर प्रमोदराय की ओर देख कर बोल उठा 'नहीं पिता जी, मैं उसे पहचान न सका!

प्रमोदराय कुछ और कहने ही वाले थे कि पुलिन द्वार की ओर देख कर बोल उठा, 'आओ, आओ नीरा!'

सब का ध्यान द्वार की ओर आकर्षित हो उठा। सामने देखा, द्वार पर दो स्त्रियाँ खड़ी हैं। उनमें एक नीरा थी, और दूसरी जमुना। इन दोनों को रात में ही गाँव के बेलदारों से पुलिन के आहत होने का समाचार मिल गया था। नीरा रात में ही पुलिन को देखने के लिये आती थी, किन्तु जमुना ने उसे न आने दिया।

नीरा को देखते ही माया का ध्यान अजित की उस बात पर गया, कि पुलिन एक लड़की से प्रेम करता है, और वह मन ही मन ताड़ गई, कि संभव है, यही वह लड़की हो किन्तु वह जमुना के सम्बन्ध में कुछ भी अनुमान न लगा सकी। कैलाशनाथ दोनों में किसी को न जानते थे। किन्तु उन्होंने आँखों में आश्चर्य भर कर एक बार नीरा, और फिर जमुना की ओर अवश्य देखा। प्रमोदराय ने भी नीरा को आश्चर्य से देखा, किन्तु उनका आश्चर्य उस समय अधिक बढ़ गया, जब जमुना और प्रमोदराय, दोनों की आँखें एक दूसरे से टकरा गईं। जमुना को देखते ही प्रमोदराय पसीने-पसीने हो गये। उन्हें ऐसा लगा, कि वे अब कदाचित् खड़े न रह सकेंगे! उधर जमुना के भी आश्चर्य की सीमा न थी। उसे भी ऐसा लग रहा था, मानों उसके हृदय में किसी वस्तु का कर्कश आघात हो रहा हो।

किन्तु जमुना और प्रमोदराय की इस स्थिति की ओर किसी का ध्यान न था। प्रमोदराय अपनी आन्तरिक स्थिति का अनुभव कर कुर्सी पर बैठ गये। किन्तु उनका ध्यान जमुना की

ओर था। सहसा जमुना उन्हें लड़खड़ाती हुई दृष्टि गत हुई, और वे बोल उठे, शीला, शीला !'

अब लोगों का ध्यान प्रमोदराय और जमुना की ओर गया। किन्तु कोई यह न जान सका, कि शीला कौन है? पुलिन और नीरा, दोनों आंखों में आश्चर्य भर कर प्रमोदराय, और जमुना की ओर निहार उठे। जमुना शक्ति छोड़ती जा रही थी और गिरने को थी। डाक्टर ने झट आगे बढ़ कर जमुना को अपनी बाहों पर लिया, और उसे पलँग पर लिटा दिया।

डाक्टर ने जमुना की नाड़ी देख कर कहा, 'बुरा हाल है!' नीरा के नेत्रों में नीर भर आये। पुलिन कह उठा, 'डाक्टर साहब बचाइये जमुना को !' डाक्टर उपचार करने लगे। नीरा और माया, दोनों जमुना के पास बैठकर उसे धीरे-धीरे पंखा झलने लगीं। उपचार से जमुना ने आँखें खोल दीं। उसने एक बार इधर-उधर देखा, और फिर नीरा का हाथ पकड़ कर वह कह उठी, बैटी नीरा अब मैं जा रही हूँ। किन्तु मुझे संतोष है, कि मैं जब जा रही हूँ तब तुम्हें तुम्हारे पिता मिल गये हैं! वह देखो कुर्सी पर ...... ! (फिर प्रमोदराय की ओर देखकर) आइये यहाँ! इस समय तो एक कामना पूरी कीजिये।'

प्रमोदराय किं कर्त्तव्य विमूढ़ होकर कुर्सी से उठ पड़े, और जमुना के पलँग के पास जाकर खड़े हो गये। जमुना ने नीरा का हाथ उनके हाथ में देते हुये कहा, 'लीजिये यह आपकी ही सम्पत्ति है। जब आपने मेरे साथ विवाह करना अस्वीकार

कर दिया, तब मैं समाज के डर से मृत्यु के लिये जमुना में कूद पड़ी। किन्तु एक बेलदार ने मुझे बचा लिया। तब से लेकर और आज तक मैं उसी बेलदार की झोपड़ी में थी। वहीं नीरा का जन्म हुआ, जो हमारे और आपके प्रेम के परिणाम स्वरूप प्रतिफलित हुई थी. और जिसे कुक्षि में छिपाकर मैं जमुना में कूद पड़ी थी।'

प्रमोदराय चुप थे। जमुना प्रमोदराय की आकृति की ओर बड़े ध्यान से देख रही थी। उसकी साँसें उखड़ी जा रही थीं। वह अपनी उखड़ी हुई साँसों से पुनः कुछ कहना चाहती थी, कि उसके बोलने के पहले ही पुलिन बोल उठा, 'क्या यह सच है पिता जी! जमुना की साँसें टूटी जा रही हैं। यदि सच है तो स्वीकार करके जाती हुई आत्मा को संतोष दीजिये।'

प्रमोदराय पुलिन की ओर देखकर मन्द स्वर में बोल उठे, 'हाँ सच है बेटा! जिसे तुम जमुना कह रहे हो, उसका नाम शीला है।' फिर जमुना की ओर देखकर, 'मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करके तुम्हारी नीरा को स्वीकार करता हूँ शीला!'

शीला ने अपने दोनों हाथ उठाये। एक हाथ उसका नीरा की ओर था, और दूसरा पुलिन की ओर। जमुना की साँसें टूट गईं। हाथ गिर गये। नीरा चीख मार कर जमुना की गोद में गिर पड़ी। पुलिन कह उठा, 'धैर्य धारण करो बहन!'

कैलाशनाथ, प्रमोदराय, माया, डाक्टर, और पुलिन, सब की आँखें ही नहीं, अन्तरात्मा तक गीली हो गई थी।